आधुनिक जैन काव्य ग्रन्थमाला ३

तीर्थंकर भगवान महावीर

रचयिता:—

वीरेन्द्र प्रसाद जैन

वीर नि० सं० २४९१
विक्रमाब्द २०२२
क्रिष्टाब्द १९६५

प्रकाशक:—

श्री अखिल विश्व जैन मिशन
अलीगंज (एटा)
उ० प्र०

मूल्य : चार रुपये

प्रकाशक—
श्री अखिल विश्व जैन मिशन
अलीगंज (एटा)

आभार

श्री पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव गोहाटी (फरवरी १९६५) पर
श्री दि० जैन पंचायत गोहाटी के दान-द्रव्य से प्रकाशित,
हार्दिक धन्यवाद !

जिओ और जीने दो !

अहिंसा परमो धर्मः यतो धर्मस्ततो जयः

सबकी सेवा करो !

प्रथम संस्करण १९५९
१००० प्रतियां
द्वितीय संस्करण १९६५
१००० प्रतियां

मुद्रक:—
महावीर मुद्रणालय
अलीगंज (एटा)

आमुख

जैन साहित्यकारों ने भारतीय साहित्य के सभी अङ्गों को अपनी मूल्यमयी रचनाओं द्वारा समलंकृत किया है। तामिल, कन्नड, अपभ्रंश आदि भाषाओं के आदि साहित्य निर्माता निस्संदेह जैन साहित्यकार ही है। संस्कृत भाषा में 'चतुर्विंशति संधान' सदृश अद्भुत चमत्कार रचनाओ को भी जैनों ने रचा है। हिन्दी भाषा साहित्य के आदिकाल में जैनों ने ही अपनी रचनाओं से उसको मूल्यमई बनाया है। अब भी जैन समाज ने साहित्य जगत का बैरिस्टर चम्पतराय जी जैन, श्री जैनेन्द्र ज प्रभृति उल्लेखनीय लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार प्रदान किये हैं। किंतु इतना होते हुये भी एक बात जो खटकती है वह यह है कि जैनों की पुरातन साहित्य परम्परा का पहले जैसा समुज्वल और प्रभावक रूप अब देखने को नहीं मिलता। जैन कथावार्ता को लेकर आधुनिक शैली में रचनाओं का प्रायः अभाव ही है। उस पर जैन महापुरुषों के आदर्श जीवन और बोधप्रद शिक्षाओं की परिचायत्मक नई रचनायें तो मिलती ही नहीं। आज हिंदी भाषा को भारत की राष्ट्र भाषा होने का गौरव प्राप्त है और उनमें एक दो अजैन साहित्यकारों ने जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर भ० महावीर के पवित्र जीवन को काव्य बद्ध करने का सद्प्रयास भी किया। परन्तु जैन सिद्धान्त और जैन साहित्य का गम्भीर और गहन परिचय न होने के कारण उसका ठीक निर्वाह वह न कर सके। इस परिस्थिति में अखिल विश्व जैन मिशन ने इस प्रकार के साहित्य के सृजन की आवश्यकता का अनुभव करके हिंदो भाषा में 'आधुनिक जैन काव्य ग्रन्थमाला' नामक नई शैली के पुस्तकमाला का प्रारम्भ किया है, जिसमें

अभी तक दो रचनायें प्रकाशित की जा चुकी है। प्रस्तुत रचना उसका तीसरा पुष्प है।

तीर्थंकर भगवान महावीर जैनधर्मके संस्थापक नहीं हैं और न ही जैन धर्म हिंसक यज्ञ परम्परा के विरोध में उद्भूत हुआ है। यह दोनों ही मान्यतायें भ्रान्त और निराधार है। इस कल्पकाल में जैन धर्म की पुनर्स्थापना प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव में उस प्राचीन युग में की थी, जब अन्तिम मनु नाभिराय इस संसार को सुशोभित कर रहे थे। उनके पश्चात कालान्तर से २३ तीर्थंकर और हुए, जिनमें सर्व अन्तिम भगवान महावीर थे। उन्होंने अपने समय की आवश्यकताओं को लक्ष्य करके जैन धर्म का पुनरोद्धार किया था। उन्हीं के प्रवचन और आदर्श लोक के लिए विशेष उपकारी हैं। यद्यपि उनके दो तीन जीवन चरित्र हिंदी गद्य में प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु हिंदी पद्य में एक प्रमाणित काव्य का अभाव खटकता था। चि०वीरेन्द्र प्रसाद जैन, बी०ए०, सा० र०, साहित्यालंकार ने प्रस्तुत काव्यको रच कर उस अभाव की पूर्ति का सराहनीय प्रयास किया है। जिनेन्द्र के गुण अथाह गम्भीर हैं, उनका ठीक निर्वाह मानव बुद्धि से परे की वस्तु है। फिर भी उसके परिशीलनसे जो भावोंमें निर्मलता आती है उसके फलस्वरूप जो भी साहित्य प्रसून प्रस्फुटित हों वे सुंदर और सुखद ही होते है। अतः प्रस्तुत रचना स्वागतार्ह है।

भविष्य में मिशन अपनी साहित्यनिर्माण योजना को श्रीमान् और श्रीमान् सहयोगियों की समुदार सहकारिता के बल पर ही सम्पन्न करने की आशा रखता है। विश्वास है, मिशन को पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

विनीत—

अलीगंज (एटा)

१८-४-५६

(प्रथम संस्करण से)

कामताप्रसाद जैन

आनरेरी संचालक
अ० वि० जैन मिशन

दो शब्द

प्रस्तुत रचना महाकाव्य है अथवा खण्डकाव्य है या क्या ? —इस ओर मेरा कतई लक्ष्य नहीं है और न इससे न मुझे कुछ सरोकार ही है। यह जो कुछ भी है मेरे आराध्य के प्रति मेरा हार्दिक भक्तिभावयुक्त श्रद्धार्घ्य है।

तीर्थंकर गुणानुवाद बड़ा ही विशद् है तथा वर्णनातीत होता है। कवि 'भूधर' कहते हैं।

'जिन गुन कथन अगम विस्तार,
बुधि बल कौन लहे कवि पार ?'

इसी बात का प्रतिपादन कवि मनरंगलाल जी के निम्न दोहे में भी देखिए:—

'इन्द्र थके गणधर थके, अरु भुजगेश थकन्त।
जश बरनत जिनवर तनो, नर किम पार लहंत ?'

भक्त हरजसराय का भी यही मत है :—

'श्री जिन जग में को ऐसो बुधिवन्त जू,
जो तुम गुण वर्णन कर पावे अन्त जू।'

जब जिन गुण-गान की बात यह तब सर्वज्ञ तीर्थंकर-जीवन को प्रकट करना सम्भव कहां ? साक्षात् केवली भगवान उसको अनुभूति में ले आते हैं, परन्तु वे उसको मुख से वर्णन करने में समर्थ नहीं होते। अपने प्रतिद्वन्दी धर्म-नेता भ० बुद्ध से प्रशंसित, इतिहास प्रसिद्ध राजा श्रेणिक और बिम्बसार द्वारा पूजित नर-अमर-वन्द्य तीर्थंकर भगवान महावीर के विषय में भी जैनाचार्य का मत यद्यपि अतिशयोक्ति अलंकार युक्त है

तथापि उनके अवर्णनीय गुणों की ओर इंगित करता हूँ:—

असितगिरि समं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवर शाखा लेखनी पत्रमूर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा, शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानां वीर पारं न याति॥*

ऐसी दशा में मैंने जो यह तीर्थंकर भगवान महावीर का पावन जीवन चरित छन्दबद्ध करने का अति साहस किया वह भी सूर्य को दीपक दिखाने के सदृश है। उसका पूर्ण होना तो असम्भव है। यथार्थ बात यह है कि भगवान महावीर का समग्र जीवन ही वह शतपत्रीय आदर्श काव्य-कमल है जिसकी सुरभि प्रसाद से अनुप्रेरित हो हर कोई अपनी श्रद्धाकृति कुसुमांजलि अर्पित कर सकता है। मैं भी उस महामानव के असाधारण व्यक्तित्व से आकर्षित हो भक्तिवश कुछ रच सका तो इसमें आश्चर्य ही क्या? 'भक्तामर स्तोत्र' में आचार्य मानतुङ्ग ने कहा:—

सोहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश,
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।×

×××　　×××　　×××

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधामः,
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।=

---

* अर्थ — समुद्र रूपी दावात में मेरु पर्वत जितनी रोशनाई डालकर संसार के सारे वृक्षों की कलमों से पृथ्वी रूप कागज पर शारदा के सदैव लिखते रहने पर भी भ० महावीर के सम्पूर्ण गुणों का वर्णन नहीं हो सकता।

× सो मैं शक्तिहीन थुति करूँ, भक्तिभाववश कछु नहिं डरूँ।

= मैं शठ सुधी हँसन को धाम, मुझ तव भक्ति बुलावै राम॥

— जब परमसुधी श्री मानतुङ्ग जैसे संस्कृताचार्य पुङ्गव अपनेको शक्तिहीन, अल्पज्ञ, विद्वानों के उपहासयोग्य बताते हैं। तब भला मुझ जैसे हिंदी साहित्य के बच्चे का ठिकाना ही क्या ?

लेकिन वास्तव में यह भक्ति की शक्ति ही है, जिसने मुझसे मेरे आराध्य के प्रति ११११ छन्द लिखवा लिए। इन छन्दों को लिखने में यद्यपि तीन साल का अन्तराल लगा पर यथार्थ में देखा जाय तो मैंने प्रति साल के दिसम्बर, जनवरी और इनके आस-पास के कुछ दिन – इस तरह लगभग ६ माह ही इस रचना में लगाये और महीनों मे इसका अवलोकन (अपवादरूप छोड़कर) तक नहीं हो पाया। मैंने अपने जीवन के २५ वें वसंत तक इसे पूरा करनेको सोची थी पर आजके लोक रंजनाके व्यस्त युग में परमार्थिक काम कब मन चाहे हो पाते हैं ? अतः इसमें भी देरी हुई। पर केवल एक साल को ही किंतु मुझे हार्दिक परितोष है कि इस रचना के लिखने के मिस ही मेरा समय अशुभोपयोग से शुभोपयोग मे लगा। और मैं आशा करता हूँ कि जो महानुभाव भी इसका परायण करेंगे, उनके समय का भी शुभोपयोग होगा, जो शुद्धोपयोग की ओर भी अग्रसर कर सकेगा।

इस रचना की प्रेरणा को बात सुन लीजिए। जब मैं हाई स्कूल व इण्टर का विद्यार्थी था उस समय जब महात्मा तुलसी दास जी कृत 'रामचरित मानस', राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' व 'हरिऔध' जी का 'प्रिय-प्रवास' आदि सु-काव्य ग्रन्थ पढ़े तो मुझे लगा कि तपः प्रधान श्रमण संस्कृति के प्रचंड मार्तण्ड भ० महावीर पर भी किसी महत्वपूर्ण काव्यग्रन्थ का सृजन होना चाहिए। उस समय २० छन्दों की एक रचना भ० महावीर पर रच डाली और उसको एक-दो जैन आयोजनों पर सुनाया। श्रोताओं ने मंत्र मुग्ध होकर सुना और मेरी श्लाघा भी की। श्लाघा तो मुझे प्रकृत्यानुरूप पसन्द नहीं आई पर श्रोताओं का मंत्रमुग्ध होकर सुनना जरूर अच्छा लगा। बाद को यह

परिवर्द्धित रचना ४० छन्दों की हो गई। बी० ए० के अध्ययन के लिए मैं प्रयाग के जैन छात्रावास में रहा। इसी समय भारतीय ज्ञान पीठ, काशी से प्रकाशित श्री अनूपशर्मा का 'वर्धमान' महाकाव्य का विज्ञापन पढ़ा। तभी छात्रावास के पुस्तकालय में कुछ पुस्तकें भी मँगाई जाने वाली थीं। मैंने उक्त पुस्तक का नाम दिया। पुस्तक आई और सबसे पहले मेरे हाथ आई। बड़े उत्साह से पढ़ना शुरू किया। पढ़ते-पढ़ते उत्साह तिरोहित होने लगा और उसका स्थान क्षोभ ने ले लिया। बात यह कि अटल तपस्वी तीर्थंकर भ० महावीर से सम्बन्धित जो काव्य हो उसका प्रधान रस श्रृंगार हो यह कभी भी उपयुक्त नहीं होसकता। शैली परम्परागत शास्त्रीय हो पर विषयानुरूप न हो तो वह अनुपयुक्त ही मानी जायगी। दूसरे जैनधर्म के महान उन्नायक के मुखारविन्द से ही जैन सिद्धान्तों के विपरीत सिद्धान्तों जैसे सृष्टि कर्तृत्ववाद आदि का प्रतिपादन कराना भी न्याय-संगत नहीं जान पड़ा। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के आलोचना स्तम्भ में इस बात की चर्चाएँ भी हुईं। फिर भी 'वर्धमान' बड़े परिश्रम से रची गई संस्कृत वर्णवृत्तों की अच्छी रचना है।

यथार्थ बात यह कि भ० महावीर के जीवन को देखते हुए तो उनसे सम्बंधित रचना के प्रकृतरूप में शान्तरस, करुणरस व वीररस (विशेषकर धर्मवीर रस) का परिपाक होना ही श्रेयष्कर है। कहना न होगा कि अब जब मैं तटस्थ होकर अपनी इस रचना को देखता हूँ तो प्रतीत होता है कि इसमें प्रसंगानुरूप उपर्युक्त रसों का परिपाक स्वभावतः हो गया है। कहीं-कहीं सीमित श्रृङ्गार व अन्य रसों की भी छाप है। भक्ति तो है ही।

बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात जब मैं घर पर आगया, तब छात्रावास के कक्ष-साथी (Room Partner) श्री भोलानाथ गुप्त का कार्ड आया जिसके एक अंश का आशय यह था कि आप भ० महावीर पर काव्य लिखना चाहते थे वह लिख

गया या नहीं ?— इसने मेरी सुसुप्त अभिलाषा को जागृत कर दिया और प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना होगई जिसके लिए गुरु जी का आभारी हूं।

यद्यपि मैंने दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों अम्नायों की वीर जीवन विषयक घटनाओं का समन्वय करने की चेष्टा की तथापि मैंने भगवान को कुमार तीर्थंकर या बाल-ब्रह्मचारी ही माना है। इसके पीछे मेरे पू० पिता जी (श्री कामता प्रसाद जी) द्वारा प्रणीत 'भगवान महावीर' पुस्तक का 'युवावस्था और गृहस्थ जीवन' अध्याय की छाप है। मुझे भ० महावीर का यह बाल-ब्रह्मचारी स्वरूप ही सदैव से प्रिय व स्पृहणीय रहा है। हो सकता है कि बाल्यकाल और तपःकाल की घटनाओं के क्रम में या और कहीं मेरे लिखने में कुछ हेर-फेर हो गया हो, लेकिन मैंने प्रायः सभी प्रमुख घटनाओं के समावेश करने की चेष्टा की है। सम्भव है कोई प्रमुख बातें रह गई हों जिनके प्रति मेरी दृष्टि हो न गई हो। बहुत सावधानी बरतने पर यह भी हो सकता है कि अज्ञानवश कोई अनुचित बात लिख गई हो। इन सब त्रुटियों के लिए मैं अपने सहृदय पाठकों से क्षमा चाहूंगा तथा उनके सूचित करने पर वे त्रुटियां अगले संस्करण में दूर करने का प्रयत्न करूंगा। अन्त में मैं अखिल विश्व जैन मिशन का आभार मानता हूं जिसके द्वारा प्रस्तुत रचना प्रकाश में आ रही है। मेरी आ० अग्रजा श्रीमती सरोजनी देवी जैन ने भी इस पुस्तक की रूप-योजना में सहयोग दिया है उसके लिए मैं उनको भुला नहीं सकता। ज्ञात या अज्ञात रूप में जिन महानुभावों या जिन स्रोतों से मुझे इस पुस्तक के निर्माण में योग मिला उन सबका मैं आभार मानता हूं।

समस्त शुभ कामनाओं के साथ। विनीत्—

वीर जयन्ती
१९५९

वीरेन्द्र

दूसरे संस्करण की बात

प्रथम संस्करणके तुरंत ही समाप्त होने के बाद अब ६ साल बाद इसका प्रकाशन हो रहा है। कारण यह कि प्रथम संस्करण धर्म प्रचार भावना से प्रकाशित हुआ था कोई व्यापारिक दृष्टि-कोण नहीं था। अतः दूसरे संस्करण के लिए दातार की प्रतीक्षा रही। श्री पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव गौहाटी (फरवरी १९६५) पर गौहाटी को श्री दि० जैन पंचायत के दान द्रव्य से इसका पुनः प्रकाशन हो रहा है। गौहाटी जैन पंचायतके यशस्वी मंत्री बा० नेमीचंद्र जी पांड्या ने वीर जयन्ती पर ही इसका प्रकाशन करने की बात लिखी थी किन्तु यह वीर-निर्वाण पर प्रकाशित हो पा रहा है। हम मंत्रीजी एवं समूची दि०जैन पंचायत गौहाटी का इस प्रकाशन की आर्थिक सहायता के लिए हार्दिक आभार मानते हैं।

इस अन्तरकाल में कुछ अन्य रचनाएं भी रचीं गईं हैं जिनमें तीर्थंकर भ०पार्श्वनाथ के पावन जीवनवृत्त से सम्बन्धित प्रबन्ध काव्य प्रमुख है। परिस्थितियों की अनुकूलता होने पर ही वह भी पाठकोंके हाथों में पहुँचेगा।

दूसरे संस्करण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किए गए हैं। कहीं-कहीं यत्किंचित परिवर्द्धन हुआ है।

अलीगंज
दीपावली
१९६५

सन्देश और सम्मतियां

[प्रस्तुत काव्य के प्रथम प्रकाशन पर कुछ विश्रुत और गण्य-मान सन्त, नेता एवं विद्वान महानुभावों तथा इष्ट जनों ने अपने आशीर्वाद, शुभकामनाएं एवं सम्मतियाँ भेज कर मुझे प्रोत्साहित एवं अनुग्रहीत किया, उन सबका मैं हृदयसे आभार मानता हूं। शुभ सन्देशों एवं सम्मतियों के कुछ अंश यहां साभार उद्धृत किये जा रहे हैं।]

सन्तप्रवर क्षुल्लक स्व० श्री १०८ गणेशकीर्ति (गणेशप्रसाद) जी वर्णी, उदासीनाश्रम, ईसरी—

"………योग्य कल्याण भाजन हो। आपका पुस्तक मिली। आपने प्रकाशन में परिश्रम किया है, तदर्थ धन्यवाद। भ० महावीर के चरित्र में दो बातें मुख्य हैं १- ब्रह्मचर्य, २- अपरिग्रह। अन्य भी बातें हैं। परन्तु जो मनुष्य इन दो बातों को अपनायगा वह कल्याण का पात्र होगा। स्वयं महावीर हो जायगा।…."

(पत्र ता० १३।५।५६)

भारत के महामहिम प्रथम राष्ट्रपति डा०स्व० राजेन्द्र प्रसाद के पर्सनल सेक्रेटरी ने प्रस्तुत काव्य पर उनकी ओर से धन्यवाद प्रेषित किया—

(पत्र नं० एफ० ४–एच। ५६ : जून २५, १९५९ : आषाढ़ ४, १८८१ [शक]।)

वयोवृद्ध हिन्दी-सेवक राजर्षि स्व० श्रीमान पुरुषोत्तमदास जी टण्डन, नई दिल्ली–

"आपकी भेजी पुस्तक 'तीर्थंकर भगवान महावीर' मिली। धन्यवाद। मैंने उसके कुछ पन्ने इधर उधर पढ़े। मेरा स्वास्थ्य अब विशेष काम नहीं करने देता। आपके इस हिन्दी-काव्य पर

बधाई देता हूं। आपकी प्रतिभा दिन-दिन प्रौढ़ हो यह मेरी कामना है।" (पत्र ता० ८।५।५९)

राष्ट्र-कवि स्व० श्रीमान् मैथिलीशरणजी गुप्त, चिरगांव—

"तीर्थंकर भगवान महावीर' पर लिखकर आपने जो अपनी श्रद्धा प्रकट की है वह प्रशंसनीय है। कामना है भविष्य में आप और भी अच्छा लिख सकें।" (पत्र ता० १५।५।५९)

वयोवृद्ध हिन्दी एवं जैन साहित्य-सेवक स्व० श्रीमान् नाथूराम जी प्रेमी, गजपंथ, म्हसरूल नासिक—

"तीर्थंकर भगवान महावीर' की प्रति जो आपने भेजी है वह यथा समय मिलगई थी, उसके पहुंचने का सूचना भी मैं न आपको दे सका। यहां आये हुए डेढ़ महीने से अधिक हो गया, परन्तु हालत नहीं सुधरी। चल फिर नहीं सकता। बहुत ही अशक्त हो गया हूं। पढ़ना लिखना भी नहीं हो सकता। आपके इस सत्प्रयत्न का अभिनन्दन ही कर सकता हूं। आशा है, आप इस मार्ग में उत्तरोत्तर उन्नति करेंगे।"

(पत्र ता० २८।५।५९)

प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी के उद्भट विद्वान डा० हीरालाल जी जैन, एम०ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०, डाइरेक्टर प्राकृत जैन विद्यापीठ, मुजफ्फरपुर (बिहार)—

"........'तीर्थंकर भगवान महावीर' की प्रति का उपहार मिल गया जिसके लिए मैं बहुत कृतज्ञ हूं। भाई कामता प्रसाद जी की 'भगवान महावीर' पुस्तक द्वारा समाज में भगवान के जीवन चरित्र की अच्छी जानकारी हो गई। अब जो उनके सुपुत्र द्वारा ही उक्त चरित्र का काव्य में रूपान्तर समाज के सम्मुख आया है उससे पाठकों को भगवान के चरित्र की जानकारी के साथ-साथ रुचिकर, सरस, मनोहर काव्य-रस का भी आस्वादन मिलेगा। इस बहुमूल्य साहित्य-सेवा के लिए मैं दोनों का हृदय से अभिनन्दन करता हूं तथा भतीजे के नाते तुम्हें

आशीर्वाद देता हूँ कि तुम अपनी काव्य प्रतिभा का खूब विकास करो और धर्म की ज्योति बढ़ाओ।" (पत्र ता० २६।५।५६)

Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.,
Raja Ram College, Kolhapur—

"I read portions of Shri Virendra Prasad's poem 'Tirthankara Bhagawana Mahavira'..............He seems to possess a natural gift and his verses flow with a remarkable liquidity and poetic grace."

(His letter to Shri K. P. Jain dated 15-5-59)

जैन वाङ्मय के वयोवृद्ध उद्‌भट विद्वान
श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार, दिल्ली—

"आपकी श्रद्धोपहार' के रूप में भेजी हुई 'तीर्थंकर भगवान महावीर' नामक पुस्तक मुझे यथा समय मिल गई थी और मैं उसे सरसरी नजर से देख गया हूं। इस चरित्र-चित्रण में आपके उत्साह और परिश्रम को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यह उत्साह और परिश्रम यदि बराबर चालू रहा तो एक दिन आप अच्छे कवि बन जाओगे। इसके लिए मेरा आपको शुभाशीर्वाद है आपका यह प्रथम प्रयास प्रायः अच्छा ही रहा है।"

(पत्र ता० १२-८-५६)

राजस्थानी साहित्य के अन्वेषक विद्वान श्रीमान्
अगरचन्द जी नाहटा, बीकानेर:—

" --- 'तीर्थंकर भगवान महावीर' नामक आपका काव्य मिला। आपकी काव्य-प्रतिभा उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करे—यही शुभ कामना है। काव्य बहुत अच्छा बन पाया है। जैनेतर व्यक्ति जैन संस्कृति को ठीक समझ नहीं पाते इसलिए आपका यह प्रयास वास्तव में सफल और महत्वका है...।"(ता०२५-५-५६)

प्रख्यात उपन्यासकार श्री जैनेन्द्रकुमार जी, दिल्ली:—

"चिरंजीव वीरेन्द्र की काव्य-कृति मिल गई। जहां तहां से

कुछ पढ़ भी गया। कविता में प्रवाह है भावाकुलता है ही। मेरी उन्हें बधाई दीजिये।" (पत्र ता० २१-४-५६)

प्रो०डा०स्व० गुलाबराय एम०ए०,डी०लिट्०,आगराः—

"श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन द्वारा लिखित 'तीर्थंकर भगवान महावीर' शीर्षक काव्य पढ़ा। इसमें भगवान महावीर के पावन चरित्र की सरल और आडम्बर रहित भाषा में बड़ी रम्य झांकी मिलती है। इसमें भगवान महावीर के जीवन चरित्रकी सरलता, ऋजुता और दृढ़ प्रतिज्ञता पर्याप्त मात्रामें उतर आई है। उनको बाल ब्रह्मचारी के रूप में दिखाया है। माता पिता से विवाह के प्रस्ताव पर वार्तालाप अत्यन्त मार्मिक है। संक्षेप में सिद्धान्त निरूपण भी अच्छा हुआ है। पुस्तक एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करती है।" (पत्र ता० ८-७-५६)

प्रो०डा०रामकुमार वर्मा,एम० ए०, डी०लिट्०, प्रयागः—

"तीर्थंकर भगवान महावीर' हिंदी की एक सफल और श्रेष्ठ कृति है। इसके लिए मेरी हार्दिक बधाई है। कृपया हिंदीको अन्य ग्रंथ रत्न दीजिये।" (पत्र १०-६-५६)

भारतीय प्रत्नविद्या के विश्रुत विद्वान डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल, एम० ए०, डी० लिट्०, हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसीः—

"तीर्थंकर भगवान महावीर' रचना में तुम्हारी काव्य साधना की सफलता देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। भगवान से यह प्रार्थना है तुम्हारा यह मार्ग उत्तरोत्तर आलोकित हो।"
(पत्र ता० ६-६-५६)

प्रो० डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, एम० ए०, डी० लिट्०, अध्यक्ष प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, सागर विश्व विद्यालय, सागरः—

"चिरंजीव वीरेन्द्रप्रसाद द्वारा लिखित 'तीर्थंकर भगवान

महावीर' शीर्षक काव्य-ग्रन्थ प्राप्त हुआ। इस सुन्दर रचना को पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। कवि ने अत्यन्त रोचक ढँग से भगवान महावीर का जीवन चरित्र दर्शन किया है। विविध छंदों में वर्धमान के समग्र चरित्र का सरस वर्णन पहली बार पढ़ने को मिला। भगवान का लोक रंजक रूप सरल शैली में गुम्फित किया गया हैं। नव युवक कवि को इस नूतन कृति के लिए बधाई।" (पत्र २७-६-५६)

श्रीमान् डा० माताप्रसाद जी गुप्त, एम० ए०, डी० लिट्०, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयागः—

"..........'तीर्थंकर भगवान महावीर' की प्रति मिली। अनेक धन्यवाद। मैं उसे आदिसे अन्त तक पढ़ गया। विषय का निर्वाह आपने बड़े ही सरल और काव्योचित ढँग से किया है। जीवनी से सम्बन्धित काव्यों में सूचनात्मक विवरणों के कारण प्रायः नीसरता आ जाती जाती है आपने उनको प्रमुखता नहीं दी है यह आपने अच्छा किया है। आपको इस रचना के लिए बधाई देता हूँ।" (पत्र ता० २६-५-५६)

श्रीमान् डा० हरदेव बाहरी, एम० ए०, डी० फिल०, डी० लिट्०, प्रयाग विश्व विद्यालय, इलाहाबादः—

"........ 'तीर्थंकर भगवान महावीर' की एक प्रति भी प्राप्त हुई बड़ी सरस और सुन्दर साहित्यिक भाषा है इसकी, यह मैं नहीं जानता था कि आप इतने अच्छे कवि हैं। आपके भाव-चित्रण का सौष्ठव देकर चित्त प्रसन्न हो गया।" (पत्र ता० १७-५-५६)

श्रीमान् डा० पद्मसिंह शर्मा, 'कमलेश', एम० ए०, पी० एच० डी०, हिन्दी विभाग, आगरा कालेज, आगरा—

"तीर्थंकर भगवान महावीर' देख गया हूं। मुझे आपका यह काव्य अत्यन्त सुन्दर लगा। भगवान महावीर का जीवन अपने जिस रूप में रखा है, वही स्वाभाविक है। और उसी को दृष्टि में रख कर श्रद्धालु श्रेय के पथ पर बढ़ सकते हैं। आपने इतनी

छोटी वय में एक महापुरुष के जीवन पर ऐसी उत्कृष्ट और सर्वांग पूर्ण रचना रचकर अपनी प्रतिमा का परिचय दिया है उसके लिए मेरी बधाई स्वीकार कीजिए।" (पत्र ता० ६-६-५६)

प्रो० राजनाथ जी पाण्डेय, सागर विश्व विद्यालय, सागर:—

"एक प्रति महाकाव्य 'तीर्थंकर भगवान महावीर' की मिली पढ़कर गद्‌गद् हो उठा। क्यों न हो! "बाढ़ै पूत पिता के धर्मे" के अनुसार आपकी प्रतिभा ऐसी होनी ही चाहिये। धर्म चेतना विहीन इस घोर कलिकाल में आपके पूज्य पिता जी निबिड़ तिमिराच्छन्न अरण्य के बीच सत्पथ और सद्धर्म रूपी दीपक का प्रकाश देते रहे हैं। ऐसे आस्तीक विद्वानों और आदर्श महापुरुष के पुत्र में आरम्भ से ही विद्वता एवं भावुकता के इन शुभ अंकुरों का मैं हृदय से स्वागत और अभिनन्दन करता हूं।

आपका महाकाव्य सादगी और साधुता से अत्यन्त ओत-प्रोत है। बधाई स्वीकार करें।" (पत्र ता० २३-८-६०)

श्री शिवसिंह जी चौहान 'गुञ्जन'* एम० ए०, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, साधना कुटीर, बरिहा, रामनगर:—

"तुम्हारी काव्य कृति 'तीर्थंकर भगवान महावीर' पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। महापुरुषों के लोक कल्याणकारी विशद जीवन-वृत्त की काव्य रूप में सफल आवतरणा कलाकार के उत्कृष्ट काव्य-कौशल की परिचायिका होती है। मैं समझता हूं 'तीर्थंकर भगवान महावीर' तुम्हारे प्रथम प्रयास का प्रतिफल है। वय एवं व्यवस्था की दृष्टि से कृति की यह उत्कृष्टता आश्च

---

* आपने मुझे (वीरेन्द्र को) कक्षा ६ से १२ तक एस० एन०एम० इण्टर कालेज कायमगंज में पढ़ाया है। मेरे हृदय में काव्य रुचि जागृत करने में आपका विशेष हाथ रहा है। 'गुरु' के प्रति आभार प्रकट करने को शब्द कहां है?

र्य का विषय है। इस रूप में तुम्हें देखकर मेरी आशा साकार हो उठी है। मुझे पूर्ण विश्वास है तुम्हारी यह सफलता शीघ्र ही कोई अन्य श्रेष्ठतम काव्य हिंदी जगत को भेंट कर सकेगी। परमेश तुम्हारी प्रतिभा को निरन्तर निखार दें। तुम पर मुझे गर्व है और मेरे इस गर्व के गौरव की रक्षा ही मेरे लिए सबसे बड़ी गुरु दक्षिणा है।

रचना पढ़कर बहुत कुछ लिखने की इच्छा हुई थी परन्तु स्वास्थ्य साथ नहीं देता।" (पत्र ता० १६-१-६०)

श्री भोलानाथ जी गुप्त,* एम० ए०, एल-एल० बी० एडवोकेट, बुढ़ी:-

"आपकी भेंट तो मुझे काफी पहले मिल गई थी लेकिन उसका रसास्वादन देर में कर सका।

मैंने आपका हिंदी काव्य 'तीर्थंकर भगवान महावीर' आद्योपान्त पढ़ा। इसे महाकाव्य कहा जाय अथवा खंडकाव्य-जहां तक मेरा अपना विचार है, इसमें महाकाव्य के शास्त्रीय सभी गुण विद्यमान हैं। जहां तक इसके आकार का सवाल है उनके लिए मैं यह सोचता हूँ कि यदि किसी व्यक्तिमें मानवोचित स्वाभाविक सभी गुण वर्तमान हों तो फिर क्या उसका आकार का छोटा होना ही उसे मानव की संज्ञा देने में अडंगा लगा सकता है? यदि नहीं तो फिर आपकी इस रचना को भी महाकाव्य कहा जाय तो फिर कोई अत्युक्ति नहीं।

मुझे खुशी है कि आपने इतनी कम आयु में इतनी सफल रचना की है। जिस लक्ष्य को सामने रख कर आपने इसकी रचना की है उस लक्ष्य की ओर आपकी लेखनी स्वाभाविक रूप से बढ़ती चली गई है। पंचम सर्ग तो इस पूरे काव्य की जान ही है। आपको इस रचना में प्रवाह है तथा बाल-लीला,

---

* आप मेरे प्रथम [illegible] के 'कप ए.टेमर' हैं। [illegible] के लिए धन्यवाद।

वात्सल्य प्रेम तथा दार्शनिक विचार इतने सरल और प्रभावोत्पादक शैली में लिखे गए हैं कि पाठक उससे प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सकता। अन्त में मैं इतना और कहूँगा कि आपकी रचना पाठकके अन्दर रसोद्गार करने में सफल हुई है और यही सफल काव्य का सबसे बड़ा गुण है।" (पत्र ता० २८-३-६०)

माननीय सौभाग्यमल जी जैन, भूतपूर्व मंत्री मध्यप्रदेश, शुजालपुर—

"मैंने आपके द्वारा रचित 'तीर्थंकर भगवान महावीर' काव्यात्मक पुस्तक का आद्योपान्त अवलोकन किया। वास्तव में इस रचना में आपकी काव्य-साधना सफल हुई है। मेरे चित्तको बड़ी प्रसन्नता हुई। पाठको को जहां भगवान महावीर के जीवन सम्बन्धी घटनाओंको जानकारी प्राप्त होगी, वहां साथ २ काव्य का रसास्वादन का आनन्दका प्राप्त होगा। मेरी हार्दिक कामना है कि आपकी काव्य प्रतिभा का खूब विकास हो ताकि आप माता सरस्वती की सेवा के द्वारा जैन साहित्य को और अधिक श्री वृद्धि कर सकें।" (पत्र ता०३०-६-५६)

श्री यशपाल जी जैन सम्पादक 'जीवन-साहित्य' दिल्ली—

"चि० वीरेन्द्र के 'तीर्थंकर भगवान महावीर' काव्य की प्रति यथा समय मिल गई थी। मुझे खेद है कि मैं उसकी पहुँच न दे सका। कुछ भाग-दौड़ में रहा। पर पुस्तक पर मैं निगाह डाल गया हूँ वह मुझे बहुत रुचिकर हुई है। बड़ी ही प्रांजल भाषा में उसमें भगवान महावीर के चरित पर प्रकाश डाला गया है। काव्य की शैली आकर्षक है और उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें कवि की वाणी-विलास नहीं है, एक उदात्त भावना है। मुझे विश्वास है कि इस लोकोपयोगी कृति का सर्वत्र आदर होगा और उसके पठन-पाठन से जैन ही नहीं, जैनेतर समाज भी लाभान्वित होगा। भाई वीरेन्द्र को मेरी ओर से बधाई दीजिये।" (पत्र ता० १६-१०-५६)

डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, एम०ए०,पी०एच० डी०, आगरा—

"'तीर्थंकर भगवान महावीर' विचारों का विश्व विद्यालय है। कवि को अपने उद्देश्य में अभूतपूर्ण सफलता मिली है। शैलीगत सौन्दर्य ध्वन्यात्मकता, स्पष्टवादिता और प्रवाह-पटुता कृति का अनोखा आकर्षण है। कला और भाव पक्ष की दृष्टि से प्रस्तुत रचना एक सफल लघु महाकाव्य की कोटि में परिगणित की जानी चाहिए। कवि की लेखनी में हिन्दी वाङ्मय को इसी प्रकार सर्वोदयी एवं पूर्ण सामग्री से सम्बर्द्धित करने की पूर्ण क्षमता है।" (बिना तारीख का पत्र)

विद्यावाचस्पति श्री शिवनारायण जी सक्सेना,एम०ए०, सिद्धान्तप्रभाकर, मेघनगर—

"आठ सर्गों में भगवान महावीर का जीवन चरित् जिस कुशलताके साथ भाई श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन सम्पादक 'अहिंसा-वाणी' ने 'तीर्थंकर भगवान महावीर' नामक प्रबन्ध काव्य ग्रन्थ में गूंथ दिया है, उसे पढ़ते ही बनता है। काव्यमें भाव चित्रण, विषय का निर्वाह, साहित्यिक भाषा तथा सरसता जैसे अनेक गुण स्वाभाविक रूप से आ गये हैं। भगवान को इसमें बाल-ब्रह्मचारी के रूप में दिखाया गया है। क्योंकि ग्रन्थकार को भगवान का यहीं स्वरूप सदैव से प्रिय रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह कृति कवि की काव्य प्रौढ़ता एवं विद्वता की भी अन्तिम छाप पाठक पर छोड़ देती है। यद्यपि भगवान महावीर के जीवन को ही इस काव्य का विषय बनाया गया है फिर भी जन्म उत्सव, शिशु वय, किशोर वय, तरुणाई, विराग केवल ज्ञान तथा निर्वाण जैसे उपयोगी स्थलों पर लेखनी चलाकर इस बात का निरन्तर प्रयास किया है कि श्रृंखला में कोई बाधा न पड़े। हिंदी साहित्य में जो यह मनोहर काव्य लिखा गया है उसके लिए मैं कवि को बधाई देता हूं साथ ही यह भी विश्वास

प्रकट करता हूँ कि माँ भारती के हिन्दी कोष में एक अमूल्य कृति में वृद्धि हो गई है।"

काव्य मर्मज्ञ श्री पं० पन्नालाल जी, साहित्याचार्य सागर:—

"तीर्थंकर भगवान महावीर' पुस्तक मिली। सुन्दर रचना है, भाव और भाषा दोनों ही हृदय में घर करते हैं। आपके इस कार्य से साहित्य की श्रो वृद्धि हुई है।" (पत्र १५ अगस्त १९६०)

श्री पं० वंशीधर जी सा०, चौमूं (जयपुर):—

'तीर्थंकर भगवान महावीर' पुस्तक की काव्य रचना बहुत सुन्दर बन गई है। इस पुस्तक का केवल 'महावीर' नाम ही रखते तो अच्छा था। जैन परीक्षालयों के पाठ्यक्रम में इसको रखवाएं सम्मेलन की हिंदी परीक्षाओं में अगर पुस्तक अथवा उसका अंश भी रखा जाय तो ठीक रहेगा। आपकी भावी रचनाएँ अधिक प्रौढ, भावपूर्ण हों एवं आप समाज के सुकवियों मे प्रमुख स्थान प्राप्त करें यही मंगल कामना है।

(पत्र ता० २१-१०-५९)

श्रीमान् बदरीप्रसाद साकरिया, सम्पादक 'राजस्थान भारती' (बीकानेर) आनन्द:—

"......... प्रथम प्रयास होने पर भी आपका यह काव्य बड़ा सुन्दर निर्माण हुआ है। हमें तो यह पता नहीं था कि आप इतने जबरदस्त कवि भी हैं। पुस्तक बधाई के योग्य है।"

(पत्र ता० १८-५-५१)

Shri Digambar Das Jain, Author of 'Shanti Ke Agraduta Bhagawan Mahavira,' Shaharanpur—

"........Not to face, but from the various articles of VOA, & A. V. Shri Virendra got a sacred place in my heart and as such I know him perfectly well. His late-

st enterprize 'Tirthankara Bhagawan Mahavira' is self-speculating, conclusive proof of his ability. The book is well arranged, richly illustrated poem and to the point. The whole book is a very interesting poem divided into eight different chapters. The language though very simple and easily understandable but very effective, impressive and attractive. I heartly appreciate Mr. Virendra's hard labour, he took to compose this very valuale book. Its paper is white and get up excellent. I wish it great success and hope that our Jains will distribute this unforgetable sweets to non-Jains at Virajayanti and Vira Nirvana festivals."

(His letter to Shri K. P. Jain, dated 15 5-59)

Shri Pukhraj Jain, Secry: The Jain Mission Society, Madras.:—

"Recently I saw an original work composed in verse by your son Shree Virendra Jain, B. A., Sahityalankar. I should say it is an excellent work. There are many poets who have born Jains but have not wield their pens on Jain characters. It was the unique work of your son who broke down this unhealthy tradition and wrote an epic poem on Lord Mahavir. Please convey our congratulations for his maiden effort."

(His letter to Shri K. P. Jain, dated 22-8-59)

डॉ० राजाराम जैन, एम०ए०, पी-एच०डी०, आरा—

"आजकल जैन साहित्य में कविता के क्षेत्र में जिस प्रकार की प्रवृत्तियाँ देखी जा रही हैं उनको देखकर मन भारी हो उठता है। आचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदीके बाद खड़ी बोली

में जिस प्रकार रहस्यवाद, छायावाद और उसके बाद प्रगति-वाद पंख लगाये दौड़ा आया, उसी प्रकार महा कवि बनारसी दास, वृन्दावन, भूधरदास और दौलतराम आदि की शान्तिवादी सात्विक साहित्यिक परम्परा के बाद जैन साहित्य में भी प्रगति वाद का काफी प्रभाव पड़ा और उसमें भीरवड़ छन्द, केंचुआ छन्द, आदि स्वच्छन्द वादी परम्परा चल निकली। कुछ तुक्कड़-बाज अपनी अशास्त्रीय विचार हीन तुकबन्दी वाली दस-बीस पंक्तियों को कविता मानकर तथा उन्हें प्रकाशित कराकर अपने को कवि मान बैठते हैं। इस प्रकार की प्रवृतियोंसे जैन साहित्य को विगत पचास वर्षों में जिस प्रकार की स्वस्थ सामग्री प्राप्त होनी चाहिए थी वह नहीं हो सकी।

अभी हाल में कुछ रचनायें ऐसी प्रकाशित हुई हैं जो पद्या-त्मक एवं शास्त्रीय पद्धति के आधार पर लिखी गई है लेकिन उनमें किसीमें तो सैद्धान्तिक उलझनें हैं और किसी में एकाङ्गीय दृष्टिकोण। इस कारण उन्हें जन सामान्य के लिए लिखी गई कृतियां नहीं कहा जा सकता।

श्री वीरेन्द्रप्रसाद जी जैन की लिखी हुई "तीर्थंकर भगवान महावीर" नामक काव्य भी देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उसे आद्यान्त पढ़ने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि तरुण कवि ने जन साधारण की भावनाओं के प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न किया है। इस काव्य को उसने आठ सर्गों में विभक्त किया है। जो भगवान महावीर के पंच कल्याणकों से सम्बद्ध हैं। कवि ने दिगम्बर एवं श्वेताम्बर मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए उनके जीवन का वर्णन उस रूप में किया है जिसे उसने तर्क सम्मत समझ इस काव्य की यही विशेषता है। कवि ने साम्प्रदायिक संकीर्णता से ऊपर उठकर अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया है।

कवि ने अपने काव्य में गेयता का ध्यान रखा है। इसमें साकेत, प्रिय प्रवास आदि की परम्परा स्पष्ट दिखाई देती है।

इस कवि की रचना का अध्ययन करने से यह भी विदित होता है कि कवि को अपने भावों को व्यक्त करने के लिए भाषा एवं शब्दों का यथेष्ट वरदान मिला है। लेकिन शाब्दिक अध्ययन करते समय उक्त काव्य में कुछ विचित्र शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। जैसे 'झोंके' के लिए 'झूँके', 'पूछ' के लिए 'पूँछ' आदि। वैसे भाषा की दृष्टि से कवि ने संस्कृत निष्ठ हिन्दी का प्रयोग अधिक किया है जिसके कारण भाषा कुछ दुरूह जैसी हो गई है किन्तु इससे प्रवाह एवं सरसता में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती।

स्थानीय वातावरण में प्राप्त शब्दों का प्रयोग भी कवि ने बड़े ठाट से किया है जैसे-'कोदों' 'मांढ़' (लगाना) कवि ने अपनी रचना को सचित्र बनाने का पूरा प्रयास किया है उससे ग्रन्थ की मोहकता काफी बढ़ गई है। छपाई और सफाई की दृष्टि से भी उक्त ग्रन्थ आकर्षक बन पड़ा है लेकिन पद्यों पर संख्या अंकित न होने के कारण उसके सन्दर्भों के उपयोग करने में कठिनाई होती है।"

कविवर श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि' रामपुरः—

"... तीर्थंकर भगवान महावीर' पुस्तक के लिए धन्यवाद पुस्तक बहुत सुन्दर और उपयोगी है। आपके प्रयत्नको सराहना करता हूं।" (पत्र ता० २६-५-५६)

सुकवि धन्यकुमार जैन 'सुधेश,' नागौद—

"...पुस्तक का प्रकाशन सुन्दर हुआ है। आपने उसे जो सर्वाङ्गीण सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है वह प्रशंसनीय है।

आपकी पुस्तक को मैंने आद्योपान्त पढ़ा है। पुस्तक आपने श्रम पूर्वक लिखी है—इसमें सन्देह नहीं। आपका यह प्रयास प्रशंसनीय है। अभी इस दिशा में लिखने के लिए पर्याप्त क्षेत्र है। आशा है भावी कवि जो इस विषय पर अपनी लेखनी चलाना चाहेंगे, आपकी कृति से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त करेंगे। मुझे आपकी इस सफलता से हार्दिक प्रसन्नता है। आशा है आप

इसी प्रकार काव्य सृजन कर जैन साहित्य के भण्डार को श्री-सम्पन्न करते रहेंगे।" (पत्र दि० ११ व ०२।५।५६)

श्रीमान् मा० उग्रसेन जी जैन, मंत्री-अ० भा० दि० जैन परिषद् परीक्षा बोर्ड, काशीपुर—

"....आपकी पुस्तक तीर्थङ्कर भगवान महावीर प्राप्त हुई। धन्यवाद। कविता सुन्दर और भावपूर्ण है और अच्छी लिखी है।"

श्रीमान् आदीश्वर प्रसाद जैन, एम. ए. सेक्सन आफीसर यू० पी० एस० सी०, मंत्री- जैन मित्र मण्डल, देहली—

"आपके द्वारा रचित 'तीर्थङ्कर भगवान महावीर' काव्य मिला। भगवान पर इतना सुन्दर काव्य लिखने का आपका प्रयत्न श्लाघनीय है आपको जैन धर्म को प्रचार की भावना तथा जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर भ० महावीर के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा के कारण ही इस सुन्दर पुस्तक का निर्माण हो सका है। भगवान महावीर के जीवन सम्बन्धी इस प्रकार के काव्य को कमी बड़ी अखरती थी। और उस कमी को पूर्णकर आपने जैन साहित्य की जो प्रगति की है उसके लिए आपको अनेकानेक धन्यवाद। आशा है कि आप भविष्य में भी इस प्रकार के जैन-साहित्य की सेवा में दत्तचित्त रहेंगे।" (पत्र ता० २५-५-५६)

डा० शान्तिलाल बालेंदु, संचालक हिन्दी ज्ञान-पीठ, इन्दौर—

"....यह प्रसन्नता को बात है कि श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन ने हिन्दी में भ० महावीर के जीवन दर्शन पर अपने श्रुत ज्ञान द्वारा 'तीर्थङ्कर भगवान महावीर' शीर्षक एकार्थ काव्य की निवर्तना की है। इस ग्रन्थ को मैंने स्वयं देखा है, यह अपने ढङ्ग का एक अच्छा ग्रन्थ है। कवि अपने विषय की महत्व पूर्ण विवेचना में पूर्णतः सफल ह। हम श्री वीरेन्द्र प्रसाद के इस सद्प्रयास का अभिनन्दन करते हैं। आशा ह भविष्य म भी हमें इनकी पीयूष

वर्षिणी वाणी का लाभ सर्जित साहित्य के रूप में प्राप्त होता रहेगा।....”

(सम्मति ता० १९-५-५१)

श्री ज्ञानचन्द्र जैन 'स्वतन्त्र', सह-सम्पादक 'जैन-मित्र', सूरत—

“.....सत्साहित्य वह नहीं जो बहुत बड़ी पुस्तक या ग्रन्थ रूप में हो। वह तो मात्र एक कलेवर है।...सत्साहित्य वह है जिसमें पाठक की रुचि बनी रहे, पुनः पढ़ने की इच्छा हो। मौलिकता एवं नवीनता मिले। तीर्थंकर भ० महावीर इसी प्रकार की सुन्दर काव्यात्मक रचना है, जो पाठकों को अपनी ओर वरवस खींच लेती है।” (विस्तृत समालोचना का एक अंश)

श्रीमती रूपवती देवी जैन 'किरण' जबलपुर—

“भाई वीरेन्द्रप्रसाद जी का काव्य 'महावीर' हस्तगत हुआ। पढ़ा, धाराप्रवाही होने के साथ ही अत्यन्त रोचक बन पड़ा है। भ० महावीर की वाणी जन-जन तक पहुँचाने का प्रयत्न स्तुत्य है। द्वेष, स्वार्थ, असीम अभिलाषाओं से पीड़ित विश्व को इस युग में शांति की साधना असम्भव सी प्रतीत होती है। मृग-मरीचिका की विभीषिका में सच्ची शान्ति के प्राप्त्यर्थ भगवान के सन्देशों का पुण्यस्मरण ही मङ्गलमय है।”(पत्र ता०७।६।५९)

श्री लक्ष्मीचंन्द्र 'सरोज' एम० ए०, जावरा—

“ प्रस्तुत काव्य ग्रन्थ लिखते समय वीरेन्द्र प्रसाद का लगभग वही दृष्टिकोण रहा जो दृष्टिकोण श्री तुलसीदास जी का 'रामचरित मानस' लिखते समय रहा और जैसे तुलसी अपने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहना नहीं भूले वैसे ही वीरेन्द्र अपने महावीर के तीर्थंकरत्व को नहीं भुला सके। अपने आराध्य का

गुणानुवाद करना उनका उद्देश्य रहा और इसमें वे आशा से भी अधिक सफल हुए।....." (विस्तृत समीक्षा से)

श्रीमान् लालचन्द जी काशलीवाल, संयोजक : अखिल विश्व जैन मिशन केन्द्र, कलकत्ता, दांता—

"तीर्थंकर भगवान महावीर' काव्य-ग्रन्थ मिला भाई वीरेन्द्र प्रसाद जी के इस प्रयास के लिये मैं हार्दिक प्रशंसा करूँगा। आपने बहुत ही सुन्दर ढङ्ग व सरस कविता में भगवान महावीर का जीवन चित्रण किया है। छपाई एवं कागज भी बढ़िया है।"

(पत्र ता० २५-५-५६)

श्री प्रकाशचन्द टोंग्या संयोजक अ० वि० जैन मिशन केन्द्र इन्दौर—

"श्री वीरेन्द्र जी की 'तीर्थङ्कर भगवान महावीर' रचना सुन्दर है।" (पत्र ता० २५।५।४९)

श्री लाडूलाल जी जैन, सीनियर हिन्दी टीचर, गवर्नमेण्ट हायर सेकण्डरी स्कूल, हरसोली (अलवर)—

"आप द्वारा रचित 'तीर्थङ्कर भगवान महावीर' काव्य के पठन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने इस काव्य की रचना कर साहित्यक क्षेत्र में वीर के शासन की बड़ी सेवा की है। आपको इस रचना के लिए हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए। वास्तव में जैन महापुरुषों की जीवन गाथा में अभी तक काव्य में राष्ट्र भाषा हिन्दी में लिखी जानी शेष है। आशा है आप अपनी प्रतिभा द्वारा और आगे भी कदम बढ़ायेंगे।"

'नव-भारत टाइम्स' (दैनिक) ता०७जून१९६५,दिल्ली-

''विद्वान लेखक ने 'तीर्थङ्कर भगवान महावीर' के अवतरण का विशद् रूप से वर्णन पद्यों में प्रस्तुत पुस्तक में किया है। साथ ही साथ भ० महावीरके वह चित्र भी चित्रित हैं जिन्हें देखकर मनुष्य आत्म-ज्ञान प्राप्त कर सकता है।.....लेखक महो-

दय ने पद्य रचना करने में अथक परिश्रम किया है। आशा है कि जन-साधारण भी इससे लाभान्वित होंगे।"

साप्ताहिक 'ज्वाला' ७ मई १९५९, जयपुर—

"......इन आठ सर्गों में (भ० महावीर के) अवतरणसे निर्वाण तक का समस्त वृत्त कवि ने शुद्ध हिन्दी में छन्दोबद्ध किया है। सिद्धपुरुष महावीर जैसे महान व्यक्ति की जीवन-कथा वर्णनाके कारण प्रस्तुत काव्य महाकाव्य है।" —श्री अंगरिस

(विस्तृत समीक्षा का एक अंश)

सप्ताहिक 'जैनमित्र' ता० ३०-४-५९, सूरत—

"......इस प्रकार के एक सुन्दर सचित्र काव्य में भ० महावीर का जीवन परिचय यह प्रथम ही प्रकट हुआ है। रचना सादी, सरल व भाव वाही व स्वाध्याय करने योग्य है।"

—श्री मूलचन्द किशनदास कापडिया

('प्राप्ति स्वीकार' स्तम्भ में प्रकाशित

समालोचना का एक अंश)

साप्ताहिक 'जैन-सन्देश' (१८ जून १९५९) मथुरा—

"कवि ने श्वेताम्बर आगमों में वर्णित महावीर के जीवन की कतिपय घटनाओं को भी जो विशेष रूप से उनके तपस्या-काल से सम्बद्ध हैं, अपनाया है। फलतः महावीर भ० की तपस्या का रोमाञ्चकारी वर्णन प्रभावक बन पड़ा है। कविता साधारणतया अच्छी है। रोचक है, पढ़ने से आनन्द आता है। प्रारम्भिक भाग तो बहुत सुन्दर है—

'मंगल प्रभात की मधुर मांगलिक बेला।
पल्लवदल से सुरभित मलयानिल खेला॥
छाई प्राची में अलसाई अरुणाई।
हो गई निशा की अब तो पूर्ण विदाई॥'

पुस्तक सचित्र है। प्रारम्भ में भगवान महावीर का रंगीन चित्र है। उसके पश्चात भी प्रकरणोपयोगी अनेक चित्र हैं।

कागज और छपाई भी साधारणतया अच्छी है। पुस्तक को आकर्षक बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। कवि का प्रयत्न सराहनीय है। आशा है कविता प्रेमी उसके इस प्रयत्न का समादर करेंगे।"

—श्री कैलाशचंद्र, शास्त्री

साप्ताहिक 'शारदा' (वर्ष ६, अङ्क ६ : १६ सितम्बर ५६ ई०) फर्रुखाबाद—

तीर्थङ्कर भगवान महावीर—

"शास्त्रीय दृष्टिकोण से पुस्तक एक सफल महाकाव्य है। उसमें महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। धार्मिक दृष्टिकोण से लेखक ने भगवान महावीर के गुणगान कर अपनी लेखनी को पवित्र किया है और जैन साहित्य के कोष की वृद्धि की है। जैन समाज में इस पुस्तक को वह स्थान प्राप्त हो सकता है जो हिन्दू समाज में गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरित् मानस का है। छपाई सफाई सुन्दर एवं आकर्षक है। कई रंगीन चित्र भी हैं। अथक परिश्रम के लिये लेखक को बधाई।" —संपादक

—श्री चंद्रप्रकाश अग्रवाल, एम० ए०, एल०एल० बी०

'जैन-दर्शन' (वर्ष ६, अङ्क २८ : ता० १-७-५६) शोलापुर—

"उदीयमान कवि भाई वीरेन्द्र प्रसाद जी ने भ० महावीर के जीवन परिचय को इस ग्रन्थ में कविताबद्ध किया है। ..हृदय ग्राही है।"

'रसवंती' (वर्ष २; अङ्क १६ : जून १६५६) लखनऊ-

"........काव्य के कुछ स्थल मार्मिक हैं और उनसे कवि के उज्ज्वल भविष्य की सूचना मिलती है।........"

[सम्पादक : डा० प्रेमनारायण टंडन]

हे वर्द्धमान !

कवि की वाणी के अलङ्कार, कवि के कवित्व के स्वप्न सुघर ।
कवि के गानों के चिर गान, फिर भी कवि-प्रज्ञा के बाहर ॥

प्रथम सर्ग

पूर्वाभास

मंगल प्रभात की मधुर मांगलिक वेला।
पल्लव-दल से सुरभित मलयानिल खेला।।

छाई प्राची में अलसाई अरुणाई।
हो गई निशा की अब तो पूर्ण विदाई।।

हर दिशा हो रही अनुरञ्जित इस क्षण में।
है बिखर रहा अरुणिम अबीर अम्बर में।।

खिच रहे उषा की मृदुल तूलिका से अब।
रमणीय दृश्य निर्झर, नगादि के नीरव।।

बन गये गगन में इस विधि चित्र सलोने।
हों मूर्तिमान ज्यों नव यौवन के सपने।।

ये मन मोहन-से विविध रूप रँग लाते।
क्रम-क्रम से स्वर्णिम हुये सभी हैं जाते।।

लो, नव आशा-सा सूर्य उदित हो आया।
उत्साह पुंज-सा किरण-निकर जो लाया।।

हो गया विश्व में स्वर्णिमांशु का प्रसरण।
अणु-अणु ज्योतित—सा हुआ, प्रकृति-प्रमुदित-मन।।

पा स्वर्ण ज्योति, पल्लव हीरे–से लगते ।
पौधों पर सुन्दर सुमन, नगों–से जड़ते ।।

इस भाँति रँगीली, कुसुमावलि मुस्काई ।
मृदु कलिकाओं में आई नव तरुणाई ।।

श्यामल भृङ्गों ने भी तो ली अँगड़ाई ।
पुष्पों के जग में मधुरिम तान सुनाई ।।

हँसते इन्दीवर सर के उर्मिल जल में ।
करते गुञ्जन जिन पर मधुकर मस्ती में ।।

उड़ता पराग सुरभित समीर है करता ।
जो स्वाँस-स्वाँस में नव-जीवन रस भरता ।।

खग-बृन्द फुदकते और चहकते उड़ते ।
कुछ कहीं कतारों में जाते, रव करते ।।

है कुण्ड-ग्राम में छटा छबीली छाई ।
राजोद्यान में रूप-राशि मुस्काई ।।

घूमने आ गईं सम्राज्ञी उपवन में ।
कुछ सखियों को भी लाई हैं वे सँग में ।।

दूर्वा के कोमल–दल पर ये सुन्दरियाँ ।
चल रहीं चरण शत-दलधर ज्यों अप्सरियाँ ।।

इनके आने से छटा और छवि पाती ।
सुन्दरता भी ज्यों इनसे है शरमाती ।।

करने उपवन ने निज आभा को द्विगुणित ।
क्या हिला पात-कर इनको किया निमंत्रित ।।

इनके स्वागत में क्या खग भौंरे गाते ?
क्या तुहिन-बिन्दु-कण इनको झलक रिझाते ?
शीतल मलजय भी क्या इनका मन हरने ?
चलता भावोंसा थिरक-थिरक सुख करने ।।

ये घूम रहीं सब ही हर्षित हो मन में।
कर रहीं हास परिहास मुदित जीवन में ।।
आ गए इसी क्षण श्री सिद्धार्थ नृपति भी ।
हो गया मुदित-सा और मोद तत्क्षण ही ।।

उन्नत ललाट नृप का प्रभाव आँखों में ।
भव्याकृति शोभित राजकीय वस्त्रों में ।।
सम्राट सम्मिलित हुये मनोरञ्जन में ।
सन गया हास-परिहास वचन-अमृत में ।।

बोले नृप, 'छाई आज अनोखी आभा ।
कोई विशेष क्या बात तभी अमिताभा ।।
जी चाह रहा मैं रहूं, निरखता यह छवि ।
दरबार-समय हो रहा और चढ़ता रवि ।।

सम्राज्ञी ने भी कहा, 'प्रकृति मुखुरित-सी ।
मुकुलित सुन्दरता साथ लिए आई-सी ।।
है समा रहा अति हर्ष हमारे मन में।
लगता शुभकर कुछ बात हुई संसृति में ।।

कुछ बातों को है मुझे आपसे कहना ।
दरबार समय हो गया, आपको जाना ।।

मैं अतः बताऊँगी दरबार-भवन में।
कुछ सपने जो देखे मैंने रजनी में॥

क्या आप जिनालय से आए हैं होकर।'
'हाँ' मैं आया जिनमन्दिर से दर्शन कर॥

हैं सपने देखे तुमने कौन कौन से?
होती अभिलाषा जानूं मैं जल्दी से॥'

'मुझको बतलाने की उत्कण्ठा भी है।
पर नियत समय दरबार पहुचना भी है॥

श्रीमान् चलें दरबार ओर अब सत्वर।
मैं भी आती सखियों संग जिन दर्शन कर॥

'पर' कहने को कुछ, रहे मौन नृप मन में।
चल दिए स्वयम् दरबार दिशा के मग में॥

उत्कण्ठा-सी छाई सम्राट वदन पर।
था रखा नियन्त्रण ने जिसको बन्दी कर॥'

सम्राट गमन के बाद स्वयम् राज्ञी भी।
चल दीं जिन मन्दिर साथ लिए सखियाँ भी॥

है प्रकृति किन्तु अब भी हँसती सी अविरत।
चढ़ आया दिनकर चटख धूप है प्रसरित॥

झिलमिल झिलमिल अब तरु-परछाईं होती।
वह मस्त झकोरे पाकर हिलती-डुलती।

है किन्तु ओर छबि छाई राज-भवन में।
नर–कृत सुन्दरता मूर्त्त हुई है जिसमें॥

बन्दन-बारों चित्रों से हुआ अलंकृत ।
ताजी सुरभित पुष्पों से भी यह सज्जित ॥

स्वच्छता स्वयम् ज्यों वास यहाँ है करती ।
प्रति वस्तु नियत उपयुक्त स्थान पर रहती ॥

इस राज-भवन के बहिद्वार पर प्रहरी ।
हैं खड़े कि जिन पर छाई निष्ठा गहरी ॥

हैं सावधान कर्तव्य कार्य में ये रत ।
क्या कर सकता कोईभी इनको बिचलित ॥

लो, लगा अभी दरबार आ गए कुछ जन ।
सुप्रतिष्ठित नागर जो सचमुच ही सज्जन ॥

मन्त्री, सेनापति अन्य कर्मचारी गण ।
आ गए सभी सम्राट सहित धीरज मन ॥

जा पहुंचे जब अपने-अपने आसन पर ।
निज रत्न-जटित सिंहासन परभी नृपवर ॥

वन्दीजन गाने लगे सुभग विरुदावलि ।
ज्यों गुनन गुनन गुन गाती हो भ्रमरावलि ॥

इनके गाने के बीच वाद्य भी बजते ।
वादित्रों के स्वर रम्य रसीले लगते ॥

इनकी सरगम है परम मनोरम अनुपम ।
सङ्गीत स्वयम् साकार थिरकता क्रम-क्रम ॥

इस-गुण-गरिमा गायन के मधुरस क्रम में ।
आ गईं स्वयम् साम्राज्ञी राज-भवन में ॥

सखियां भी अपने साथ साथ वे लाईं ।
मानों अप्सरियां स्वयम् शची सँग आईं ।।
वे आईं या आए लक्षण सब श्री के ।
सब खड़े हो गए मान हेतु रानी के ।।

राजा ने भी कर दिया रिक्त अर्द्धासन ।
सब बैठे अब हो रही सभा अति शोभन ।।
सिंहासन पर राजा–रानी यों लगते ।
साकार न्याय–सुषमा हो कर ज्यों सजते ।।

चल रहा किंतु विरुदावलि का अविरल क्रम ।
सुन रहे सभी हो मन्त्र मुग्ध जिसमें रम ।।
पर शांति हुई जब हुआ अन्त गायन का ।
चल दिया कार्यक्रम जो निश्चित प्रतिदिन ।।

जब नियत कार्यक्रम अन्त हुआ नृप बोले ।
सम्राज्ञी से उत्सुक अमृत रस घोले ।।
'हे शुभे ! स्वप्न देखे क्या क्या हैं तुमने ।
बतलाओ जो हैं सुने नहीं हम सबने ।।

सम्रागी बोली 'पिछले प्रहर रात्रि में ।'
देखे मैंने सपने कुछ सुख निद्रा में ।।
इनके आशय के ज्ञान हेतु उत्सुक मैं ।'
जागी उत्कण्ठा स्वप्न–ज्ञान की सब में ।।

मन्त्री बोले श्रीमान् हमारे नृपवर ।
बतलाएंगे स्वप्नार्थ कहें राज्ञीवर ।।
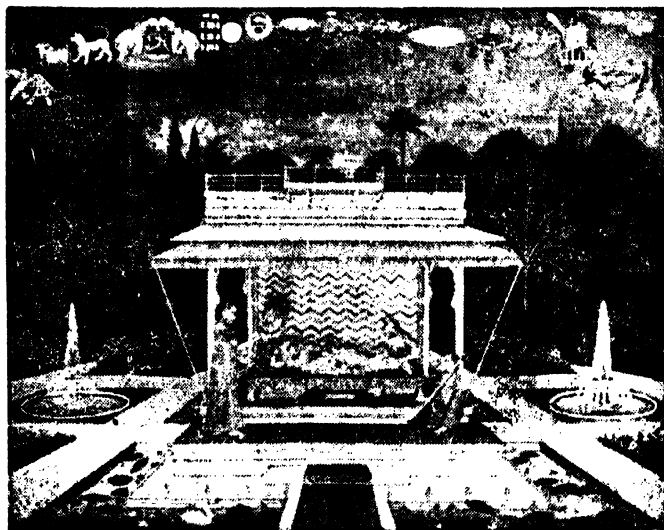
तीर्थङ्कर माँ त्रिशला देवी के सोलह स्वप्न

"देखे मैंने कुछ सपने सुख-निद्रा में।"

— त्रिशला

कारण सुभाग्य से नृप निमित्त ज्ञानी हैं।
है तीव्र बुद्धि उनकी वे विज्ञानी हैं ॥

सम्राट और सम्राज्ञी कुछ मुस्काए ।
फिर सम्राज्ञी ने अपने स्वप्न सुनाए ॥

वे बोलीं 'देखा सर्व प्रथम गज मैंने ।'
नृप लगे सोच कर उत्तर को यों कहने ॥

'इसका आशय तुम भाग्यवान सुत की माँ।
होओगी जग में फैलेगी तब गरिमा ॥'

सम्राज्ञी त्रिशला ने आगे बतलाया ।
'देखा वृष जिसकी हृष्ट-पुष्ट सित काया ॥'

'होगा तव सुत वह धर्म सुरथ का चालक।'
यों सोच समझ बोले वे जनता-पालक ॥

रानी बोलीं, 'फिर आया स्वप्न सिंह का।'
'होगा अनन्त बल पौरुष तव उस सुत का ॥

'इससे अगला है स्वप्न सुभग लक्ष्मी का।'
'स्वामी होगा वह सुथिर मोक्ष लक्ष्मी का ॥'

यों बतलाया नृप ने रानी स्वप्नोत्तर ।
सब दिखते थे मन मुदित हुए तदनन्तर ॥

'मैंने देखी सुरभित फूलों की माला ।'
इस भांति कहा रानी ने स्वप्न निराला ॥

नृप उत्तर में बोले 'उस सुभग पुत्र का।
जग में फैलेगा अविरल सौरभ यश का ॥'

'देखा है मैंने पूर्ण चन्द्र राका में ।'
'वह नष्ट करेगा मोह तिमिर जीवन में ।।'

'फिर इसके बाद सुहाया सपना रवि का ।'
'वह ज्ञानालोक करेगा आशय जिसका ।।'

'तदनन्तर आया युगल मीन का सपना ।'
'लाएगा सुन्दर सौम्य भाग्य वह अपना ।।'

'फिर देखी जोड़ी भरे हुए कलशों की ।'
वह प्यास बुझाएगा अशान्त तृषितों की ।।'

'पश्चात स्वप्न में आया स्वच्छ सरोवर ।'
'पाएगा सर से सहस्राष्ट लक्षण वर ।।'

सब उत्कण्ठित से स्वप्न अर्थ यों सुनते ।
सम्राट स्वयम् मन अमित मोद से भरते ।।

फिर स्वप्न कथन में हुईं अग्रसर रानी ।
'देखा लहराता निर्मल सागर पानी ।।'

उत्तर में बोले नृप सुज्ञान के धारक ।
'तव सुत पयोध-सा होगा शान्त विचारक ।।

'फिर स्वप्न–पटल पर दिखा सुभग सिंहासन ।'
'वह तीन लोक का पाएगा राज्यासन ।।'

'फिर देव यान स्वप्नों में मुझे दिखाया ।'
'चय स्वर्ग लोकसे तव सु–गर्भ में आया ।।'

'तब दिखा नाग प्रासाद स्वप्न में क्रम से ।'
'वह पूर्ण त्रिज्ञानी होगा जन्म समय से ।।

'इस स्वप्न शृङ्खला में सुरत्न अवलोके।
'इनका आशय शुभ गुण होंगे उस सुत के ॥'

'स्वप्नों की चित्रपटी पर अन्तिम सपना।'
'मैंने देखा था प्रचण्डाग्नि का जलना॥'

इसका मतलब नृप ने आखिर बतलाया।
'वह पुत्र करेगा अपनी प्रबल तपस्या ॥

कर देगा जिससे भस्म कर्म का ईंधन।
यों प्राप्त करेगा केवल पद अक्षय धन ॥'

सब के श्रीमुख से धन्य-धन्य ही निकला।
यह धन्य बात है होगा पुत्र निराला ॥

यों क्रम-क्रम स्वप्नों का आशय सुन मानो।
साकार हर्ष नाचने लगा है जानो ॥

कुछ सोच नृपति ने कहा 'प्रकृति उपवन में।
थी अमित मुदित क्या इस शुभ वृत्त कथन में ॥'

साम्राज्ञी त्रिशला ने भी कुछ मुस्का कर।
'हाँ' ही जैसे कह दिया मौन भी रह कर ॥

तदनन्तर कोई दरबारी थिरता से।
बोला 'उत्पीड़ित आज धरा हिंसा से ॥

श्रीमन् स्वराज्य की सीमा में तो किंचित।
कुछ शांति धर्म सा दिख पड़ता है निश्चित ॥

परलोक हो रहा है हिंसा में आगे।
भौतिकता-दिशि में लोग जा रहे भागे ॥

पद–दलित शांति सुख के प्यासे दिखते हैं ।
पर कौन बुझाये प्यास दीन मरते हैं ।।
यह धन्य भाग्य जो धरती पर आयेंगे ।
भावी कुमार निज जो दुख दूर करेंगे ।।
ऐसा ही तो स्वप्नार्थों से भासा है ।
यह ही तो अपनी चिर-सञ्चित आशा है ।।'

दरबार विसर्जित हुआ किंतु,
आरम्भ हुई नव अभिलाषा।
नूतन कुमार मुख-दर्शन की,
जागी सब ही में जिज्ञासा ।।

द्वितीय सर्ग

जन्म-महोत्सव

कुण्ड ग्राम का नगर सौम्य-सा,
चहल-पहल से भरा हुआ।
दूर छुद्र झगड़ों से है यह,
सुभग शान्ति में सना हुआ॥
न्याया-मर्ग में निरत नृपति भी,
कियत अनीति न करते हैं।
समता के सुन्दर प्राङ्गण में,
सब स्वच्छन्द विरचते हैं॥
नागर बृन्द, प्राय सज्जन सब,
जीवन सरल बिताते हैं।
चोर, दस्यु, गुण्डे, दुर्व्यसनी,
सुनने में कम आते हैं॥
और उधर भी राज-भवन में,
सुन्दर जीवन की लय है।
सुलभ सभी सामग्री जिसमें,
स्वयम् मोद का आलय है॥

अन्तःपुर में त्रिशला देवी,
सुख-जीवन यापन करतीं ।
उनकी परिचर्या में तत्पर,
दासी हैं अनेक रहतीं ॥
धीरे-धीरे क्रम-क्रम करके,
समय सरकता जाता है ।
जो भी क्षण जाता है लेकिन,
सौख्य-सृष्टि कर जाता है ॥
यों सम्राज्ञी त्रिशला माता,
के दिन सुख से बीत रहे ।
प्रसव काल आता जाता है,
किन्तु न कोई कष्ट सहे ॥
ये लक्षण तो बतलाते हैं,
वत्स असाधारण कोई ।
माँ त्रिशला के होने वाला,
क्या इसमें शङ्का कोई ॥
त्रिशला माँ की टहल बजातीं,
हैं छप्पन कुमारियाँ सब ।
भाँति–भाँति की चर्चा करके,
वे प्रसन्न करतीं हैं सब ॥
इस चर्चा के सुन्दर क्रम में,
प्रखर बुद्धि सम्राज्ञी की ।

दिव्य झलकती ही रहती है,
यह विशेषता है उनकी ॥
इन चर्चा वार्ताओं में भी,
गर्हित बात न है होती ।
ज्ञान धर्म के विषयों पर ही,
चर्चा परम सरल होती ॥
इन वार्ताओं में कुमारियाँ,
पहले जिज्ञासा करतीं ।
रानी वित्युत्पन्न बुद्धि से,
उनका समाधान करतीं ॥
कोई पूछा करतीं—'बोलो,
प्राणी क्यों नीचा होता ?'
झट से रानी कह देतीं हैं,
'भङ्ग प्रतिज्ञा जो करता' ॥
कोई जटिल प्रश्न करतीं हैं,
'है जग में ऐसा दिखता—
कोई जन तो मुँह रख कर भी,
बोल नहीं किञ्चित सकता' ॥
इसका कारण रानी कहतीं,
'पूर्व जन्म में जो करते—
पर-निन्दा अपनी सु-प्रसंसा,
वे प्राणी गूँगे होते ॥'

एक प्रश्न के बाद शीघ्र ही,
प्रश्न दूसरा है होता ।
'बोलो जी किस पाप कर्म से,
प्राणी है बहरा होता ॥'
रानी त्वरितोत्तर देतीं हैं,
'प्राणी वे बहरे होते ।
जिनको आवश्यकता होती,
उनकी बात न जो सुनते ॥'
प्रश्न इसीविधि होते रहते,
जैसे 'क्यों डूँड़े होते ?'
रानी कहतीं 'पूर्व-जन्म में,
दान न जो किञ्चित देते ॥'
इसी भाँति ही अन्य कुमारी,
पूँछ बैठतीं हैं ऐसे ।
'बोलो माँ श्री कौन पाप से,
होते कुछ जन लँगड़े-से ?'
सम्राज्ञी कहतीं मृदुता से,
'सुनो सहेली मम सुन्दर ।
यह तो बात तनिक-सी ही है,
भाव नहीं कोई दुस्तर ॥
जो पशुओं को अधिक लादते,
और कष्ट उनको देते ।

वे दुर्जीव समय पाकर ही,
हैं लूले लँगड़े होते ॥'
उत्तर सुन-सुन सब कुमारियाँ,
हैं आश्चर्य-चकित होतीं।
लेकिन मन की जिज्ञासा कों,
पूर्ण शान्त वे हैं करतीं॥
रानी उत्तर देतीं या ज्यों,
स्वयम् बुद्धि साकार हुई।
उत्तर दे जाती चुपके से,
क्या विचित्र यह बात हुई !
या मेधावी वत्स गर्भ में,
अतः बुद्धि अति प्रखर हुई।
चाहे कुछ भी हो कारण,
पर माँ श्री की मति दिव्य हुई॥
ऐसे ज्यों-ज्यों दिवस बीतते,
सुख-आह्लाद - बृद्धि होती।
जीवन की इस सुन्दर गति में,
अति प्रसन्नता है होती॥
वत्स-जन्म का समय आ गया,
पर कष्टों का नाम न है।
सब में हर्ष समाया जाता,
दुख - विषाद का काम न है॥

केवल अति सुख राज-भवन में,—
हो,—ऐसी ही बात नहीं।
निखिल नगर सम्पन्न हो रहा,
दिखता है यह सभी कहीं॥

शुभ प्रभात मध्याह्न समय में,
ऐसा लगता है जानो।
रत्न-राशि बरसाया करता,
है कुबेर ही सच मानो॥

अब पुर में समृद्धि थिरकती,
कोई दीन न दिखता है।
सब ही हैं सम्पन्न हुए ज्यों,
कोई क्षुधित न मरता है॥

यों समृद्धि-प्रसार सहित ही,
समय मन्द - सा थिरक रहा।
'चैत्र शुक्ल तेरस' के दिन का,
शुभकर हो आगमन रहा॥

विमल रुपहली चन्द्रकला भी,
क्या हँस कर 'शशि' से कहती।
'प्रियतम ! तुमसे सुभग चन्द्र यह,
पाने वाली है धरती॥

'हाँ प्रिय ! ठीक-ठीक कहती तुम,
यह अपना सुभाग्य होगा।'

बोला वह, 'भू-शशि दर्शन का,
शुभ सुयोग अपना होगा॥'
उधर नगर की निकटवर्तिनी,
प्रकृति सलौनी है हँसती।
लगता कोई बात निराली,
होने को क्या यह कहती!
धीरे-धीरे प्राची-तट पर,
अरुणिम ऊषा मुस्काई।
अनुपम अरुणोदय हो निकला,
तरुण दिव्य आभा आई॥
चिर आह्लाद आज ऊषा में,
चरम-बिन्दु सुन्दरता का।
लो, क्या हो निकला मृदु कम्पन,
उसके लाल कपोलों का॥
उसके अरुण अधर हिल निकले,
बोल उठी वह क्या मानों।
'मेरे दिनकर! आज तुम्हारे,
साथ उदय होगा जानों॥
पृथ्वी पर 'जाज्वल्यमान रवि',
ज्ञानालोक दिव्य जिसका।
ध्वस्त करेगा निखिल विश्व में,
घन प्रसार मिथ्या-तम का॥'

लो, इस शुभ दिन, शुभ वेला में,
'त्रिशला-सुत' का जन्म हुआ।
तीन लोक में मङ्गल छाया,
पुण्य-पुञ्ज अवतरित हुआ ॥
कहते नर्क-लोक में भी तो,
प्रगट हुई क्षण-भर साता।
भूतल की क्या, देवलोक में,
जन्म महोत्सव था होता ॥
उधर बज उठी भुवन-वासियों,
देवों की सुन्दर भेरी।
व्यन्तर देव - मृदङ्गों की भी,
हुई न बजने में देरी ॥
घनन घनन घन, घनन घनन घन,
टनन टनन टन, टन टन टन।
कल्पवासियों के घण्टे भी,
बाज उठे थे यों क्षण क्षण ॥
छन छन छन छन, छनन छनन छन,
नाच उठीं कुछ अप्सरियाँ।
उनकी रुन-झुन नूपुर ध्वनि सुन,
गान गा उठीं किन्नरियाँ ॥
सारा नभ प्रतिध्वनित हो उठा,
जय - जय मङ्गल नादों से।

मृदु सङ्गीत सुरीले स्वर भी,
निकल रहे सुर वाद्यों से ॥
और उधर सौधर्म इन्द्र का,
हुआ प्रकम्पित सिंहासन ।
लगा सोचने अवधिज्ञान से,
कम्पित होने का कारण ॥
भासा सहसा ऐसा उसको,
वसुधा के शुभ वक्षस पर ।
अपने पुण्यों को सञ्चित कर,
हुए अवतरित तीर्थङ्कर ॥
सीमा लाँघा अमित मोद भी,
हर्षातिरेक–सा उसे हुआ ।
क्षणभर को भी देर न करके,
चलने को तैयार हुआ ॥
आ पहुंचा वह कुण्डग्राम की,
सीमा में ले निज परिकर ।
त्रिसला–सुत के जन्म-स्थान पर,
शची साथ पहुंचा सत्वर ॥
देखा जब नवजात पुत्र तो,
तृप्त न इन्द्र हुआ स्वर्गिम ।
शिशु कमनीय रूप लखने को,
किए सहस्र नेत्र कृत्रिम ॥

तृप्त न फिर भी निर्निमेष वह,
रहा निरखता छवि अनुपम ।
शेष रही फिर भी नेत्रेक्षा,
शिशु सजीवता यह अनुपम ॥
किन्तु अन्त में मायामय-सी,
निद्रा में कर त्रिशला को ।
की नियुक्त कुछ सुर-बालाएं,
माँ श्री की परिचर्या को ॥
फिर निर्मित कर शिशुस्वरूप—सा
एक वत्स मायावी जो ।
उठा लिया नव वत्स शची ने,
लिटा दिया शिशु कृत्रिम को ॥
क्योंकि इन्द्र को न्हवन हेतु था,
'शिशु' सुमेरु तक ले जाना।
इस अन्तर में अतः किसीको,
पड़े न सुत वियोग सहना ॥
ऐरावत गज पर शिशु संग ले,
सुभग इन्द्र ने गमन किया।
अगणित देवों ने भी उसका,
मोद सहित अनुसरण किया ॥
गाजे बाजे साथ साथ ही,
नृत्य-गान होते जाते।

पुष्प-वृष्टि अम्बर–पथ में भी,
'जय-जय' स्वर करते जाते ॥
जब पहुंचे सुमेरु पर, सुत को,
स्फटिक शिला पर बिठलाया ।
क्षीरोदधि से कञ्चन–कलशों—
में सुनीर फिर मँगवाया ॥
हाथों ही हाथों देवों ने,
जल लाकर अभिषेक किया ।
शिशु के सस्मित मुख-मण्डल पर,
दिव्य कान्ति ने जन्म लिया ॥
धन्य भाग्य जो तीर्थङ्कर सुत,
के दर्शन का योग मिला ।
संस्तुति-गान-स्नान करने का,
देवों को शुभ समय मिला ॥
और धन्य ये त्रिशला-सुत जो,
इनकी सेवा सुर करते ।
पूर्व उपार्जित सत्कृत्यों के,
फल ऐसे ही हैं मिलते ॥
यों अभिषेक आदि करके सुर,
कुण्डग्राम की ओर चले ।
तीर्थङ्कर शिशु साथ लिए वे,
मोद मनाते हुए चले ॥

नृत्य गान वादित्रों की लय,
लहर रही जल लहरों-सी।
उत्सव का आह्लाद समाया,
देवों की सुस्थिति ऐसी ॥
ले आया सौधर्म इन्द्र फिर,
वत्स निकट माँ त्रिशला के।
पूर्ण देव–कृत, जान न पाए,
माता-पिता कुछ जन घर के ॥
मायावी पुतले को तब फिर,
इन्द्र·शची ने नष्ट किया।
उसकी जगह शीघ्र त्रिशला–सुत,
को स्वाभाविक लिटा दिया ॥
सम्राज्ञी माँ त्रिशला की अब,
निद्रा का भी अन्त हुआ।
और तभी ही कुछ सुयोग से,
नृपवर का आगमन हुआ ॥
देवों ने तब मात पिता का,
मङ्गलमय यश·गान किया ॥
तीर्थंङ्कर सुत के होने का,
यों शुभकर सन्देश दिया।
दे कर के फिर हर्ष बधाई,
कर के नत वन्दन शिशु के।

गए स्वर्ग को देव सभी फिर,
मोद भरा मन में उनके ॥
और इधर भी निखिल नगर में,
जन्मोत्सव की धूम हुई ।
केवल राज-भवन में ही क्या,
घर घर में सुख-सृष्टि हुई ॥
जन्म बधाई गीत गा रहीं,
घर—घर महिलाएं मिलकर ।
ढोलक बजती जाती होते,
साथ मजीरों के मृदु स्वर ॥
राज-भवन में आज हर्ष का,
छोर नहीं है कुछ दिखता ।
राजकीय बाजे बजते हैं
मधुरिम नृत्य गान होता ॥
केशरिया ध्वज फहर-फहर कर,
लहर रहे छत के ऊपर ।
तोरण बंदनवार बँध रहे,
राज-महल के द्वारों पर ॥
उधर नाट्य शालाओं में भी,
नाटक हैं खेले जाते ।
चार चांद उत्सव शोभा में,
सुभग लगाये हैं जाते ॥

जन्मोत्सव - समयोपलक्ष में,
खुली दान की शालाएँ।
निशि-दिन दान जहाँ बटता है,
रिक्त न लौट व्यक्ति जाएँ॥

दश दिन तक यों हुआ महोत्सव,
हर्ष–ज्योति अविरल जागी।
गया निराशा अन्धकार भी,
निविड क्लेश–रजनी भागी॥

राज-ज्योतिषी ने ज्योतिष से,
योग लगा कर बतलाया।
उत्तर फाल्गुणी नक्षत्र में,
जन्म पुत्र ने है पाया॥

इसके जन्म समय से ही है,
सब चीजों की वृद्धि हुई।
अतः राज-सुत 'वर्द्धमान' ही
होगा इसका नाम सही॥

पुर का चर्चा–विषय बन रहा,
जन्म–वृत्त त्रिशला-सुत का।
कोई कहता 'देवों ने भी,
शुभाभिषेक किया इनका॥'
कोई कहता, 'जो भी हो,
पर शुभ लक्षण हैं बालक के।

जब से जन्म हुआ तब से ही,
बढ़ती है होती सबके ॥
काश ! इसी से 'वर्द्धमान' है,
नाम रखा इनका सुन्दर ।
यथा नाम चरितार्थ हो गया,
यह शिशु की महिमा गुरुतर ॥
जबसे जन्मा शिशु तबसे ही,
कोई दुखद न बात हुई।
शुभकर शकुन दिखाई पड़ते,
होतीं बातें नईं नईं ॥
उधर बनों में प्रकृति सजीली,
देखो तो हँसती—सी है ।
क्या शिशु जन्म—प्रभाव-प्रबल से,
उसकी छवि बासन्ती हैं ॥
पीत-हरित कुछ विविध रङ्ग के,
हैं दुकूल उसने धारे ।
पुष्पों के मुख से मुस्काती,
हर्ष-प्रदर्शन ढँग न्यारे ॥
कुञ्जों के अवगुण्ठन से क्या,
इठलाती-सी पेख रहो ।
जन्मोत्सव की शोभा को,
स्पृहा-भाव से देख रहो ?

वह भी तो मधुकर-गुञ्जन मिस
जन्म बधाए गाती है।
ढोलित पात सरर-सर निर्झर,
नद-स्वर तान सुनाती है ॥
और उधर अब राज-भवन में,
जहाँ कि माँ त्रिशला रहतीं ।
अगणित सखियाँ परिचर्या में,
उनकी सदा लगीं रहतीं ॥
मन-हर सुत को मैं ले आऊँ,
तनिक खिला पाऊँ उसको।
सब प्रयत्न ऐसा करतीं हैं,
हर्षित करतीं माँ श्री को ॥
माँ त्रिशला भी गोद लिए शिशु,
अमित मोद मन में भरतीं।
तन-मन भोले सस्मित शिशु पर,
निशिदिन न्योछावर करतीं ॥

वत्स की माँ ले रहीं हैं;
मृदु बलैयाँ बार-बार।
धन्य उनका मातृ-पद है;
सौम्य-सा शिशु होनहार ॥

तृतीय सर्ग

शिशु त्रय

द्वितिया राका—पति से अब,
शिशु 'वर्द्धमान' बढ़ते हैं।
छवि किन्तु कलाधर से भी,
अपनी अनन्त रखते हैं॥

वे अभी किन्तु नन्हें—से,
मुन्ना भोले-से लगते।
हैं बोल नहीं पाते पर,
'आ-आ, आ-आ' स्वर करते॥

उनके 'आ-आ' स्वर में भी;
मधुरिम सङ्गीत निखरता।
सुनने के लिये सभी का,
क्षण में जमघट-सा लगता॥

वे बीच-बीच मुस्काते,
जैसे कि फूल झड़ पड़ते।
रद-रहित वदन पर उनके,
स्मित लख सब जन हँसते॥

झालर-मय मणियों वाले,
लेटते पालने में वे।
धीरे-धीरे से झूके,
पा कर झट सो जाते वे॥

जब सोते हैं तब उनकी,
मुख-मुद्रा को सब लखते।
उनके अङ्गों की उपमा,
ललितोपमान से करते॥

कोई कहता, 'देखो तो,
अब रूप शयन करता है।'
उसके ऊपर भी तो अब,
मृदु हास हास हँसता है॥

मुख-मण्डल तो बिल्कुल ही,
शशि की समता है रखता।
भौं पलक श्याम दर्शातीं,
मुख-चन्द्र बीच श्यामलता॥

'पर अरुण अधर से मुख तो'
झट बोली एक सहेली।
'लगता है बाल भानु-सा,
तू समझ न इसे पहेली॥

हैं जिसकी धवल ज्योति से,
तम केश भागते पीछे।

फिर भला नहीं रवि तो क्या,
कोई हमसे तो पूछे ।।'

"जी नहीं, एक उपमा तो,
मन उमड़ रही मेरे है ।
मुन्ना शरीर - सरवर में,
मृदु-मुख अरबिन्द खिला है ।।

यह प्रफुलित पूर्ण कमल–सा,
जो अरुण सुरभि मय जैसे ।
युग श्रवण पात–से लगते,
तम केश भृङ्ग–माला - से ।।

इस पर कोई सखि इठला,
इठलाकर कुछ यों बोली ।
"है नवल कमल से कोमल,
तो इनके कर-पग-तल हो ।।

मुख तो अरुणोदय लगता,
कुछ छटा अरुण सी रखता ।
जिसको लख अपने उर का,
मीलित-इन्दीवर खिलता ।।

इतने में बोली माँ श्री,
कुछ मन ही मन मुस्काती ।
'जब है उपमेय हृदयहर,
उपमाएँ अगणित आतीं ।।

मैं तो इतना कह सकतीं,
नन्हा-सा मुन्ना अपना ।
उसके मिस ज्यों हम सबको,
साकार हुआ सुख-सपना ।।

ऐसे सुख-चर्चा-क्रम में,
सम्राट स्वयं आ जाते ।
वे भी शामिल हो प्रमुदित,
हैं स्वाद अनोखा पाते ।।

सोते ही वर्द्धमान शिशु,
हैं तनिक मुस्करा देते ।
तो व्यंग्य-सहित रानी से,
कुछ कहते नृप मुस्काते ।।

'है सहज विमाता देखो,
यह खिला रही तब सुत अब ।
तुम खिला नहीं पाते हो,
क्या पुत्र नहीं है यह तव ?

अथवा रूठा है तुमसे,
वह मुदित खेलता उससे ।
क्या बात हुई है ऐसी,
जो नहीं खेलता तुमसे ।।'

'जैसे कि आप आए हैं,
वैसे ये लक्षण होते ।

मैं क्या जानूँ कि कौन-सा,
जादू श्रीमन् हैं करते ?

क्या आप मातृपद मेरा,
हैं सहज चाहते लेना ?
पर व्यर्थ आपका यह सब,
मेरा मुन्ना है अपना ॥

वह जब कि जागता है तब,
खेला करता है मुझसे ।
तब स्वयम् आप आ जाते,
'आ-आ' सुनने को जैसे ॥

सन्निकट आपके रहता,
व्यंग्यों का भरा पिटारा ।
पर मुझे न झेंपा सकता,
वह स्वयम् निपट बेचारा ॥'

रानी उत्तर सुन नृप का,
फिर भला प्रश्न यह होता ।
'तब कौन व्यक्ति सोते में,
मुन्ने को कहो हँसाता ?'

'क्यों आप बन रहे भोले,
ज्ञानी हो कर भी कहते ।
सोते में कौन खिलाता,
मुन्ने को हँसते-हँसते ?

प्रतिफलित हो रहा शिशु के,
सञ्चित कर्मों का लेखा ।
जो हमने सौम्य वदन पर,
देखी सु-हास की रेखा ॥'

सम्राट स्वयम् मुस्काए,
उत्तर सुन सम्राज्ञी का ।
स्वीकार कर लिया जैसे,
यह कथन नृपति ने उसका ॥

इतने में मुन्ने ने झट,
सोते में करवट बदली ।
माँ बोली–'जाग रहा शिशु,
सुन कर के अपनी बोली ॥

उसकी निद्रा में बाधा,
पड़ रही अतः मत करिए ।
कोई भी वार्ताएँ अब,
कुछ शान्त हुए-से रहिए ॥'

सब हुए मौन ही सहसा,
रुक गया बात का कहना ।
पर खला सभी को उस क्षण,
मुन्ना–समीप चुप रहना ॥

क्षण एक न लेकिन बीता,
मुन्ना ने खोलीं आँखें ।

लग रही मनोहर कैसी,
उनकी कुछ श्यामल आँखें ॥

रतनारे नयनों से छवि,
झीनी जीवन्त झलकती ।
जिसको लखने को निशदिन,
ये आँखें सदा तरसतीं ॥

हैं धन्य भाग्य रानी नृप,
सखियों भृत्यों पुरजन के ।
हाँ, किए जिन्हों ने होंगे,
दर्शन त्रिशला-नन्दन के ॥

जगने पर सुत के सब जन,
बातें हैं उनसे करते ।
वे बोल न कुछ भी पाते,
पर बीच-बीच मुस्काते ॥

उनके मुस्काने पर ही,
सब उन पर बलि-बलि जाते ।
करते प्रसन्न सबको यों,
शिशु बर्द्धमान हैं बढ़ते ॥

जब रात पड़े पर भी है,
शिशु को न नींद कुछ आती ।
सो जा मुन्ना तू सो जा,
माँ लोरी ललित सुनाती ॥

लोरी को सुनते-सुनते,
वे सो जाया हैं करते ।
तो मात-पिता कुछ चर्चा,
उन पर ही करते सोते ॥

रजनी में सोते-सोते
जब वे हैं जाग बैठते ।
तो घण्टों जगमग-जगमग,
हैं दीप जोहते रहते ॥

शुभ जगर—मगर दीपक सँग,
उनकी यह क्रीड़ा मनहर ।
देखा करते हैं नृप भी,
अपनी निद्रा को खोकर ॥

उनका प्रसन्न चित रहता,
रोते न कभी हैं दिखते ।
क्या इसी लिए उन पर हैं,
निशिदिन दुलार सब करते ॥

शुभ प्रातकाल नर-नारी
उनका मुख लखने आते ।
कहते वे इससे उनके,
सब कार्य सिद्ध हो जाते ॥

मङ्गलमय मङ्गलकारक,
शिशु का मञ्जुल मधुरानन ।

यह स्वयम् शकुन ही जैसे,
सर्जक संसृति-सुख-कानन ॥

धीरे-धीरे वे बढ़ते,
मानों कुछ ऐसा लगता।
जैसे विहान-वेला में,
क्रम-क्रम प्रकाश हो बढ़ता ॥

दो-तीन मास ही बीते,
लेकिन वे घुटनों के भर।
चलने की कोशिश करते,
शिशुवय में अमित शक्तिवर ॥

वे अब कलबल कलबल कर,
बातें भी करने लगते।
अपने नन्हें हाथों से,
कुछ संकेतों को करते ॥

जब सुभग महल आँगन में,
वे कुछ कुछ सरका करते।
तब मात-पिता कुछ गृह-जन,
टुक टुक उनका श्रम लखते ॥

उनके सस्मित मुख-विधु के,
भामण्डल पर छवि बसती।
निर्द्वन्द-भाव में कैसी,
सुन्दर निरोहता हँसती ॥

सब उनको गोदी लेते,
पर वे तो भूमि ओर ही।
जाने को कोशिश करते,
दिखती उनकी यह रुचि ही॥

पृथ्वी पर लोट-लोट कर,
घुटनों वे चलने लगते।
मंजुल प्रसन्न आनन से,
दो दाँत हृदय–हर दिखते॥

मानों कि अधर अम्बुधि से,
युग रद के रत्न निकलते।
लख जिन्हें मात-पितु गृह-जन,
हैं फूले नहीं समाते॥

बढ़ते शिशु बर्द्धमान कुछ,
अब स्वयम् बैठ जाते हैं।
घुटनों के बल तो वे अब,
अति छिप्र चाल चलते हैं॥

मां त्रिशला उनकी गति को,
लख कर प्रसन्न होने को।
कुछ दूर–दूर जा करके,
वे प्रायः बुलातीं उनको॥

'आ-आ, माँ–माँ' कुछ करते,
माँ निकट शीघ्र वे जाते।

इतने में हट जातीं,
ज्यों ही माँ निकट पहुंचते ॥

वे शीघ्र वहाँ से मुड़ कर,
माँ ओर दौड़ हैं भरते ।
घण्टों ही यों वे माँ-सँग,
हैं खेल खेलते रहते ॥

जब बहुत देर हो जाती,
वे तनिक खीझने लगते ।
लेकिन न नेक भी रुकते,
माँ को वे छूते फिरते ॥

माँ त्रिशला थका जान कर,
हैं उन्हें गोद में लेतीं ।
वे अति दुलार से उनको,
पुचकार सहज ही लेतीं ॥

सारा वैभव ही उनका,
इस पर न्योछावर होता ।
क्या तीन लोक का कोई,
सुख इससे समता रखता ॥

शिशु वर्द्धमान छोटे हो,
घुटनों ही अभी सरकते ।
पर अपनी सीमा में ही,
वे सभी यत्न हैं करते ॥

उनके मग में जब भी हैं,
ऊँची दहरी आ जाती।
तब उसे पार करने को,
उनकी कोशिश है होती ॥

माँ त्रिशला नृपति अन्य जन,
आकर सुत चेष्टा लखते।
देखते-देखते शिशु को,
दूसरी ओर हैं पाते ॥

शिशु वर्द्धमान जब इसविधि,
निज कार्य सिद्ध कर लेते।
ताली निज लघु हाथों से,
तब बजा-बजा कर हँसते।

इस पर सहसा ही कुछ जन,
लोकोक्ति सुभग दुहराते।
होने वाले 'विरवा' के,
'चीकने पात' हैं होते ॥

नृप-सम्राज्ञी के मुख पर,
कुछ स्वाभिमान की रेखा।
ऐसे समयों पर ही तो,
सब जन करते हैं देखा ॥

त्रिशला-सुत कभी शून्य में,
देखा करते इकटक हो।

जैसे गम्भीर भाव से,
करते कोई चिन्तन हों ॥

शिशु वय में महा दार्शनिक,
जैसे योगी ही लगते ।
उन्नत ललाट पर उनके,
कुछ रेखा-चिह्न झलकते ॥

इस दिव्य भाल पर उनके
है लगा दिया चुपके से ।
मां श्री ने काजल तिरछा,
लग जाए 'नजर' न जिससे ॥

यह कज्जल–बिन्दु सोहता,
उनके मुख पर है ऐसे ।
शुभ उर्मिल जल में हँसता,
मृदु नील कमल है जैसे ॥

वे धीरे-धीरे बढ़ कर,
अब उठने स्वयम् लगे हैं ।
पर डगमग–डगमग हिलते,
वे स्वयम् खड़े होते हैं ॥

उठ कर नन्हें हाथों से,
वे ताली खूब बजाते ।
खिलखिला हास वे करके,
सबको निहाल कर देते ॥

मां या नृप-हाथ पकड़ वे,
हर्षित स्व अजिर में चलते।
या कभी स्वतः भी चलने,
का साहस करने लगते॥

दो पग ज्यों ही वे चलते,
वैसे ही हैं गिर पड़ते।
पर नहीं हार ले कर के,
कुछ बैठे ही वे रहते॥

वे पुनः खड़े हो कर हैं,
चलने का यत्न सँजोते।
क्रम-क्रम चलने में यों ही,
वे पारंगत हैं होते॥

यों लखकर शिशु की दृढ़ता,
आश्चर्य चकित सब होते।
सब के भी चकित वदन लख,
शिशु वर्द्धमान मुस्काते॥

उनके ही मुस्काते सब,
खिलखिला हास हैं करते।
जैसे दिनकर को लख कर,
अनगिन सरसिज हों खिलते॥

सम्राट वत्स को प्रायः,
हैं राज-भवन में लाते।

दरबारी शिशु-दर्शन कर,
चिर आशा सफल बनाते ॥

शिशु वर्द्धमान छोटे हैं,
पर शिष्टाचार उन्हें है।
माँ त्रिशला की शिक्षा से,
सम्भाषण-ज्ञान उन्हें है ॥

समुचित सम्भाषण करते,
सुत को जब नृप पाते हैं।
तो मन ही मन वे सचमुच,
अति तोष-हर्ष करते हैं ॥

शिशु वर्द्धमान भोले-से,
इकटक प्रति वस्तु देखते।
उनमें जिज्ञासा रहती,
ऐसा सब अनुभव करते ॥

है उन्हें कभी कोई भी,
ले जाता पुर-मार्गों से।
तो उनका मनमोहक मुख,
सब लखते उत्कण्ठा से ॥

महिलाएं शीघ्र झरोखों,
छज्जों द्वारों पर आतीं।
लख सस्मित शिशु को वे सब,
निज जीवन सफल बनातीं ॥

यों राज कुमार स्वयम् भी,
घूमते हर्ष हैं करते ।
वे नगर हाट उद्यानों,
को देख मोद मन भरते ॥

पर जब तक माँ त्रिशला से,
वे विलग रहा करते हैं।
तब तक विह्वलता में क्षण,
हैं उन्हें बिताने पड़ते ॥

वे बाट जोहतीं रहतीं,
अन्यत्र न मन रमता है ।
माँ की कितनी कोमलतम,
होती अभिन्न ममता है ॥

वे यों एकाकीपन में,
सुत-स्मृतियाँ सुभग सँजोतीं ।
जिनमें निमग्न हो कर वे,
अपना हैं समय बितातीं ॥

दासी को कभी बुला कर,
उससे हैं बातें करतीं ।
इन बातों में भी तो वे,
सुत चर्चा ही हैं रखतीं ॥

वे कभी द्वार पर आहट,
सुन दासी तुरत भेजतीं ।

शिशु आया हुआ न पा कर,
कुछ खीझ-खीझ यों कहतीं ॥

जाने कब तक आएगा,
प्यारा-सा मुन्ना अपना ।
मैं कहीं न जाने दूँगी,
उसको निश्चय यह अपना ॥

हो जाय कहीं यदि कुछ भी,
अपने मुन्ने को बोलो ।
मैं क्या फिर समझ रहूंगी,
मम हृदय-दशा तो तोलो ॥

दासीं कहतीं कि आप हैं,
यह व्यर्थ सोचतीं सब कुछ ।
मुन्ना का भाग्य बड़ा है,
उसका होगा न तनिक कुछ ॥

फिर आहट पाकर माँ श्री,
हैं स्वयम् द्वार तक जातीं ।
अपना मन लिए हुए सीं,
पा शिशु न लौट वे आतीं ॥

फिर स्वयम् उसे पाने को,
चलने को उद्यत होतीं ।
इतने में मुन्ना आता,
वे अमित मोद मन करतीं ॥

जब मुन्ना आ जाता है,
तो मानों माँ त्रिशला के।
साक्षात रूप आ जाते,
उनके मानस-प्राणों के ॥

वे टुक निहाल हो जातीं,
मुन्ने को गोद गोद उठा कर।
मुन्ना भी मातृ–अङ्क में,
हँसता है हर्षित हो कर ॥

जब कभी कभी माँ त्रिशला,
दर्पण ले चोटी करतीं।
तो वे अपने सुत को तब,
कुछ उलझा उसमें पातीं ॥

वे निज प्रतिबिम्ब देखकर,
मन में अति प्रमुदित होते।
उसको छूने को सहसा,
हैं वे निज हाथ बढ़ाते ॥

इस पर माँ और उपस्थित,
जन अट्टाहास-सा करते।
शिशु भी अपनी मस्ती में,
खिलखिला खूब हैं हँसते ॥

बचपन की कैसी मस्ती,
कोई छल-छन्द नहीं है।

जीवन का परम सरलतम,
सात्विक आनन्द यही है॥

धीरे धीरे यों करके,
हैं दिवस बीतते जाते।
त्यों-त्यों त्रिशला-नन्दन भी,
क्रम—क्रम हैं बढ़ते जाते॥

अब बात चीत भी प्रायः,
वे करने खूब लगे हैं।
उनकी बातों के रस में,
सब जन भी खूब पगे हैं।

वे अन्य मनस्क कभी जब,
रहते कोई चुपके से।
ले उनके शिरस्त्राण को,
दुबका देता धीरे से॥

वे शीघ्र समझ जाते तब,
कहते 'मम शिरस्त्राण' क्यों!
है उठा लिया जी तुमने,
कुछ समझ न पाया मैं ज्यों!!

रह व्यक्ति कि जिसने उनका,
था शिरस्त्राण दुबकाया।
बोला-'क्यों लेता उसको,
होगा कौवा ले धाया॥

इस पर शिशु वर्द्धमान कुछ,
उठकर निज शिरस्त्राण ले।
फिर कहते हैं वे उससे,
'क्यों व्यर्थ झूठ थे बोले ?

उनकी यह सजग सुचेष्ठा,
लख नृपवर कुछ यों कहते।
'निज वत्स कुशलतम शासक,
होगा यह लक्षण दिखते॥'

शिशु वर्द्धमान के कारण,
हर्षतिरेक-सा रहता॥
त्रिशला-गृह के आँगन में,
ज्यों चाँद खेलता फिरता॥

उनकी कुछ बाल सुलभ–सी,
चेष्टाएं मनहर होतीं।
जिनमें कुशाग्र मति उनकी,
है नया रङ्ग भर देती॥

ज्यों कजरारे सावन के,
अति सघन मेघ-प्रसरण में।
द्युति चमक-दमक कर जैसे,
भर देती आभा उसमें॥

अथवा पावस सन्ध्या में,
कुछ हल्के बादल-तट पर।

सतरङ्गी इन्द्रधनुष-छवि,
करती शोभा सुन्दरतर ।।

इन राजकुमार सन्निकट,
हैं बहुत खिलौने रहते ।
पर वे तो उन्हें स्वयम् ही,
निर्मित कर खेल खेलते ।।

ज्यों कभी वस्त्र की दशियों,
झण्डियाँ बनाया करते ।
फिर उन्हें पंक्ति में फहरा,
हैं गान सुरीला गाते ।।

शिशु कभी पुष्प-पत्तों को,
पा कर हैं हर्ष मनाते ।
फिर बड़े चाव से उनके,
गुलदस्ते हार बनाते ।।

इस अल्प आयु में भी तो,
उनकी शुभ हस्तकला है ।
जिसमें भी राशि-राशि ज्यों ।
अनुपम सौन्दर्य भरा है ।

राजा-रानी यह लख सब,
हैं फूले नहीं समाते ।
निज सुत–सा बालक पाकर,
निज भाग्य सराहा करते ।।

वे शिशु के 'जुग–जुग' जीने,
की आश सँजोते रहते।
इसविधि अपना वे जीवन,
शुभ सरस सरलतम करते॥

जब रात हुए सुत माँ–सँग,
लेटा करते शैया पर।
तो माँ जी उन्हें सुनातीं,
कुछ लघु कहानियाँ सुन्दर॥

जब वे कहतीं–'था राजा,
थी रानी एक नगर में।'
तो झट कुमार कह देते,
कुछ अरुचि साथ उत्तर में॥

मैं सुनना नहीं चाहता,
राजा–रानी की गाथा।
इनके सुनने में तो है,
कुछ व्यर्थ पचाना माथा॥

मुझको तो भली लगी थी,
उस दिन की क्षमा कहानी।
जिससे कि पार्श्व स्वामी के,
जीवन की झांकी जानी॥

अब उसी भाँति कोई भी,
मां कह दो सत्य कहानी।

मत कभी सुनाओ मुझको,
राजा था या थी रानी ॥

रानी फिर बोली-बेटा !
जो तुमको अच्छी लगती।
वैसी ही कोई गाथा,
मैं तुमको अभी सुनाती ॥

श्री ऋषभदेव–जीवन की
सुस्मृति रेखायें जो थीं।
अब उनको निज शब्दों में,
कर रहीं सुभग चित्रित थीं ॥

जिनमें आकर्षित हो कर,
शिशु मग्न हुए-से सुनते।
यह देख कहानी क्रम भी,
नृप शामिल हो रस लेते ॥

निज शिशु को कुछ ऐसा ही,
गाथाओं में रुचि लखकर।
सम्राट सोचते होगा,
यह-ऋषभ-पार्श्वसा नरवर ॥

यों सुत-चिन्तन में नृपवर,
सो जाते शान्त भाव से।
माँ-पुत्र नींद में भी आ,
सो जाते हैं धीरे से ॥

हैं बना कूप-तक रोसें,
आँगन में बाग लगाते ।।

अथवा लेकर वे लकड़ी,
हैं घोड़ा उसे बनाते ।
फिर चारों ओर क्षिप्रतम,
हैं दौड़ दौड़ दौड़ाते ।।

वर्द्धमान की बाल सुलभ ये,
शुभ चेष्टाएँ हृदय मोहतीं ।।
उनकी तुच्छ क्रियाओं से भी,
मौलिक बातें अमित सोहतीं ।।

चतुर्थ सर्ग

किशोर वय

इन बच्चों की टोली के हैं,
अधिनायक बालक वर्द्धमान।
उनकी सर्वोपरि बुद्धि शक्ति,
रहती उनकी आज्ञा प्रमाण॥

वह बालक टोली खेल जहाँ,
अब करती वहाँ युगल यतिवर।
आ निकले जिनका नाम विजय,
सञ्जय जो चारण ऋद्धि-निकर॥

इनको शङ्का यह थी—
जाता है जीव मरण के बाद कहाँ।
है स्वर्ग-नर्क भी या कि नहीं,
या केवल गोचर लोक यहाँ॥

वह शङ्का-शूल हृदय में था,
उद्विग्न किए युग मुनिवर को।
जैसे कि फाँस साला करती,
जिसके चुभ जाती उस जन को॥

पर वर्द्धमान बालक-नायक का,
मुख-मण्डल प्रभावशाली।
लख दूर हो गई स्वयम् आप,
शङ्का अस्थिर करने वाली॥

युग मुनिवर ने इनको पाया,
सु-विचक्षण बालक मेधावी।

झट सोचा 'सन्मति' नाम सुभग,
मति भेद सकी गति मायावी ॥
इन द्विवेषी सु-साधु जन को,
श्री वर्द्धमान ने देखा जब ।
बोले वे सभी साथियों से,
चल करें साधु-स्वागत हम सब ॥
बालक घिर आए मुनि-समीप,
निज नायक के कथनानुसार ।
युग यति का अभिनन्दन करने,
थे खड़े हुए सब विनय धार ॥
मुनि द्वय ने भी बालक-गण को,
आशीर्वाद हो मुदित दिया ।
फिर वर्द्धमान का नाम सुभग,
'सन्मति' बच्चों को बता दिया ॥
तदनन्तर युग मुनिवर सत्वर,
थे विदा हुए अपने पथ पर ।
पर सन्मति बालक ने 'सन्मति',
उपयुक्त नाम पाया सुन्दर ॥
इति बात खेल में अब कहते,
उनसे 'सन्मति' बालक-गण सब ।
पर समरस 'सन्मति' को किञ्चित,
था गर्व न पा यह गुरु गौरव ॥

जब लौटे घर को वर्द्धमान,
माँ-पिता, सभी को बच्चों ने।
बतलाया 'सन्मति' नाम रखा,
जब खेल रहे वे युग मुनि ने॥

सुन यह घटना सब मुदित हुए,
माँ त्रिशला का मृदु मुख दमका।
कुछ स्वाभिमान की रेखा से,
था नृप-मुख-मण्डल भी चमका॥

जब वर्द्धमान के शिक्षक ने,
इस शुभ घटना को था जाना।
हर्षातिरेक स्वाभाविक ही,
मन-मोद उन्होंने था माना॥

बोले सहसा—'इस बालक का,
मैं नाम यही तो सोच रहा।
जो अभिनव मैंने बतलाया,
वह उन्हें सदा ही ज्ञात रहा॥

जब कभी कहीं मैं भूला कुछ,
इनको लख शीघ्र याद आया।
इनकी सु-प्रज्ञ मुद्रा ऐसी,
मैंने भी यह अनुभव पाया॥

यह स्वयम् प्रज्ञ-से लगते हैं,
इनको कोई क्या शिक्षा दे!

सचमुच मुझको ऐसा लगता,
इनसे शिक्षक भी शिक्षा लें ॥'

वे अध्ययन करते और ख़ूब,
नित नूतन खेल रचाते हैं।
निज जीवन को बहुमुखी सौम्य,
वे इसविधि सरस बनाते हैं ॥

इस जीवन की वे नव वय में,
हैं सत्य वचन बोलते सदा ।
अस्तेय पालते पूर्णतया;
करते हिंसा किञ्चित न कदा ॥

वे ब्रह्मचर्य से रहते हैं,
विषयों में जाती नहीं दृष्टि ।
परिमाण परिग्रह में उनके,
सज्जीवन की आदर्श सृष्टि ॥

इस सदाचरण परिणाम रूप.
उनमें अनन्त दृढ़ता सु-धैर्य ।
बढ़ रहा निरन्तर दिन प्रति दिन.
उनमें साहस बल अमित शौर्य ॥

उनके साधारण कृत्यों में,
है वीर-वृत्ति दिखती सदैव ।
पुरुषार्थ हेतु उद्यमी सदा,
उनका आदर्श न रहा दैव ॥

इसलिए 'वीर' अब नाम पड़ा,
विकसित सन्मतिका बल विक्रम ।
साहसिक कार्य प्रायः करते,
दुर्गम भी उनके हाथ सुगम ॥

मानों कि वीर्य-साहस अनुपम,
आकर उनमें ही चरम हुआ ।
अथवा कि सफलता से उनका,
कोई अभिन्न सम्बन्ध हुआ ॥

यह बाल वीर-बल-यश-चर्चा,
अब चारों ओर विकीर्ण हुई ।
उस स्वर्ग लोक में भी तो हाँ,
सन्मति-साहस पर बात हुई ॥

बोला—'त्रिलोक में' कोई सुर,
साहस न किसी का सन्मति-सम ।
इस पर लेकिन विश्वास नहीं,
कर पाया कश्चित् सुर सङ्गम ॥

अतएव परीक्षा सन्मति की,
करने को उसने मन ठानी ।
अति जटिल परीक्षा कोई—सी,
वह सोच रहा था विज्ञानी ॥

खेलते बाग में वट-तरु-तर,
जब सन्मति निज साथियों सङ्ग ।

तब सङ्गम सुर झट बन आया,
अति भयकारी काला भुजङ्ग ॥
वह वृक्ष–तने पर लिपट गया,
कुछ भाग रहा उसका भू पर ।
विष की विषाक्त-सी फुफकारें,
अब मार रहा था वह विषधर ॥
जैसे ही बच्चों ने देखा,
वे नौ-दो-ग्यारह शीघ्र हुए ।
मुँह उठा उसी दिशि में भागे,
वे महा भीत निर्वाक हुए ॥
पर वर्द्धमान वे बाल वीर,
किञ्चित न डरे उससे दृढ़तर ।
पहुंचे तत्काल फणीश निकट,
जा खड़े हुए उसके फण पर ॥
उसके फण पर खेलते रहे,
थे बहुत देर वे अति निर्भय ।
था रचता क्रीड़ा रहा वहाँ,
फणधर भी मग्न हुआ अतिशय ॥
बच्चों ने राज–भवन में जा;
विषधर वृतान्त सब बतलाया ।
उद्विग्न हुए अति नृप-त्रिशला,
जब साथ न सन्मति को पाया ॥

मां त्रिशला बोलीं नृपवर से,
क्या बात नहीं सन्मति आया।
वह जाने कहां किस तरह है?'
जो त्रिशलाका अति भर आया॥

नृप बोले 'तुम चिन्ता न करो,
मैं अभी ज्ञात सब करता हूं।
मैं भृत्य भेजता और स्वयम्,
उस बाग ओर हो जाता हूं॥

त्रिशला बोलीं—'शीघ्रता करें,
कोई न घटित दुर्घटना हो।
यदि राज-वैद्य भी साथ लिए,
जावें तो अति ही अच्छा हो॥

जी चाह रहा यों मेरा भी,
मैं भी श्रीमन के साथ चलूं।
निज वर्द्धमान को देख सकूं,
कैसे मन मारे यहां रहूं?

नृप बोले-'तुमको साथ लिए,
चलने में तनिक देर होगी।
कारण रथ की तैय्यारी सब,
तव गमन-हेतु करनी होगी॥

मैं जाता, नहीं बिलम्ब करूं',
कह नृपति गए झट ही बाहर।

वे चले वैद्य कुछ जन ले कर,
वन को, चर भेजे इधर-उधर ॥
लेकिन अन्तःपुर में त्रिशला,
माता को धैर्य न कियत हुआ ।
वे क्षण-क्षण पर हैं सोच रहीं,
जाने क्या होगा वहाँ हुआ ॥

दासियाँ निरत परिचर्या में,
सखियाँ मृदु उनसे बोल रहीं ।
सब विधि से ढाढस दे उनको,
हैं ध्यान बटा हर समय रहीं ॥

माँ त्रिशला कहतीं हैं उनसे,
जब भी–'अब जाने क्या होगा ?'
तो कहतीं उनसे हैं सखियाँ,
'उनका न बाल बाँका होगा ॥

कारण सन्मति है भाग्यवान,
उनको होगी अति दीर्घ आयु ।'
यह सुन माँ जी को भी ऐसा,
लगता पातीं ज्यों धैर्य-वायु ॥

लेकिन संकल्प-विकल्पों के,
भूलों पर हैं वे भूल रहीं ।
वे धैर्यवान हो कर भी हैं,
चिन्तित-सी सब कुछ भूल रहीं ॥

माँ के अन्तर की कोमलता,
मां के ग्रन्तस की मृदु ममता।
मां का मानस ही जान सका,
क्या इसकी कहीं प्राप्य समता ?

जा पहुंचे उधर बाग में जब,
सब सन्मति को ढूंढ़ते हुए।
नृप वैद्य आदि ने देखा तब,
उनको फण पर खेलते हुए ॥

ग्राश्चर्य चकित कुछ स्तम्भित,
रह गए सभी जन जो ग्राए।
कौतूहल पर सबके मुख पर
भय-चिह्न सहज ही दिखलाए ॥

पैरों की भूमि सरकती-सी,
उन सबको थी भासने लगी।
रोंगटे खड़े सबके ग्रागे—
बढ़ने की पर हिम्मत न जगी ॥

लेकिन वे वर्द्धमान निर्भय,
उस सर्प-साथ खेलते रहे।
पर एक दूसरे का मुँह वे,
आगन्तुक गण देखते रहे ॥

लेकिन सन्मति को कुशल देख,
नृप को साहस कुछ तोष हुआ।

इतने में ही सङ्गम सुर को,
आगत जन-संकुल-बोध हुआ ॥
वह स्वाभाविक स्वरूप में झट,
आया सन्मति को उठा लिया ।
बैठाया निज कन्धों ऊपर,
आनन्द-सहित, मन हर्ष किया ॥
पहुँचा वह स्वयम् वीर को ले,
आगन्तुक सु-जनों के समीप ।
'तुमने यह क्या था खेल रचा ?'
संगम सुर से बोले महीप ॥
उत्तर न देव कुछ कर पाया,
सन्मति उतरे झट कन्धों से ।
सम्राट निकट जा खड़े हुए,
वे स्वस्तिवाद कर सब जन से ॥
नृपवर सन्मति के शिर पर अब,
थे हाथ फेरते खड़े हुए ।
संगम-सुर-उत्तर सुनने को,
मानों वे केवल रुके हुए ॥
बोला सुर—'खेल कुतूहल जो,
समझें, पर शौर्य-परीक्षा–हित ।
मैंने यह था सब ढोंग रचा,
पर हुए वीर वर इसमें जित ॥

नृप ने फिर पूंछा – 'देवराज !
क्यों शौर्य परीक्षा को ठानो ।'
तब उत्तर में वह बोला यों,
जाज्वल्यमान स्वर्गिम प्राणी ॥

'जब स्वर्गलोक में बात चली,
सन्मति सम जग में शौर्य नहीं ।
तब मैं विश्वास न कर पाया,
ली अतः परीक्षा जटिल यहीं ॥

यह सन्मति केवल वीर नहीं,
ये तो सच अतिशय धीर वीर ।
मैं तो कुछ सोच समझ इनका,
हूं नाम रख रहा 'महावीर' ॥

यह यथा नाम है तथा गुणः,
इसमें कोई अत्युक्ति नहीं ।'
सबके अन्तस में यही बात,
है सत्य बनी अब गूंज रहीं ॥

नृप ने शाबासी दी सुत को,
अति हर्ष समाया सबके मन ।
बोले नृप—'शीघ्र चलें घर मां,
इनकी इन विन होंगीं उन्मन ॥

सुर ने सन्मति को पुनः उठा,
अपने कन्धों पर बिठलाया ॥

सबके फिर साथ चला पुर को,
हर्षातिरेक-सा हो आया ॥
जा पहुंचे सब प्रासाद निकट,
मां त्रिशला खड़ी द्वार पर थीं।
सखियों संग बाट जोहतीं वे,
सुत-मिलन हेतु अति आतुर थीं ॥
जब देखा सुर के कन्धों पर,
बालक सन्मति को चढ़े हुए।
तो वे प्रमुदित लेकिन विस्मित,
दुर्भाव तिरोहित शीघ्र हुए ॥
वे भूलीं-सीं देखने लगीं,
सन्मति को निर्निमेष दृग से।
पर वर्द्धमान झट देख उन्हें,
उतरे सङ्गम के कन्धों से ॥
आ पहुंचे वे मां के समीप,
शुचि प्रेम-पगा सम्वाद किया।
मां ने दुलार से आशिष दे,
सुत स्नेह-अङ्क में उठा लिया ॥
नृप, राज्ञी, सखियां, सुर, सन्मति,
फिर अन्दर गए महल प्रशान्त।
इतने में नृप ने बतलाया,
सब देव-परीक्षा का वृतान्त ॥

सम्राज्ञी बोलीं—'देवराज !
यह खेल तुम्हारे लिए रहा।
यदि हो जाता कुछ सन्मति को,
तो जाता कैसे दुःख सहा ॥

सचमुच जीवन तब मुश्किल था,
हम तो सुत भर ही जीते हैं।
इनके बिन तो सब काम धाम,
लगते हमको अति रीते हैं॥'

सुर बोला—'माँ जी ! वर्द्धमान,
होते इतने यदि वीर नहीं।
तो सुनो परीक्षा की नौबत,
आ सकती थी किञ्चित न कहीं॥

फिर भी मैं क्षमा माँगता हूं,
श्रीमती आपसे भूपति से।
पर वर्द्धमान होंगे प्रसिद्ध,
सच 'महावीर' जग में अब से ॥

इतना कह कर सुर सङ्गम ने,
ली विदा उपस्थित सब जन से।
कर नमस्कार वह चला गया,
निज स्वर्गलोक को भू-तल से ॥

यह घटना कई दिवस तक थी,
बन गई विषय जन-चर्चा का।

नृप राज्ञी से पूछता अगर,
कोई वृतान्त इस घटना का ॥
तो वे बतलाते मग्न हुए,
प्रमुदित जो कुछ था हुआ घटित ।
श्रोता तन्मय हो कर सुनते,
करते सन्मति-श्लाघा हर्षित ॥

सम्मानित होते वर्द्धमान,
अब 'महावीर' शुभ संज्ञा से ।
लेकिन उनमें अभिमान नहीं,
बाहर–भीतर वे समरस-से ॥

सागर-से वे गम्भीर-धीर,
आकाश सदृश विस्तीर्ण दृष्टि ।
योद्धाओं से बढ़ अतुल शौर्य,
पर हृद्-ऋजुता की मृदुल सृष्टि ॥

आनन्द सहित दिन बीत रहे,
सन्मति हो आये अब किशोर ।
साहसिक कार्य करते रहते,
चिन्तन में भी रहते विभोर ॥

सामाजिक कार्यों में उनको,
रहता किञ्चित सङ्कोच नहीं ।
जन-हित निज प्राण-समर्पण में,
होता कुछ उनको सोच नहीं ॥

है एक दिवस की बात कि जब,
गज हुआ एक अति मदोन्मत्त ।
झञ्झा-सा भगता इधर-उधर,
स्वच्छन्द हुआ मद में प्रमत्त ॥

वह लोह-सांकलें तोड़-ताड़,
भागा था हाथीखाने से ।
ज्यों काल मूर्त ही दौड रहा,
गज मिस उन्मुक्त हुआ जैसे ॥

हस्ती-पग-तल मरते अगणित,
जन जो भी पथ पर आ जाते ।
पर असह्य वेदना से वे सब,
तज रहे प्राण थे चिल्लाते ॥

थे सभी महावत चकडाए,
वश कर न सके गज मतवाला ।
हिम्मत परास्त थी हो जाती,
देखते जभी हाथी काला ।

गण्डस्थल से मद चूता था,
चिंघाड़ रहा घन-गर्जन सा ।
अतिशय विशाल तरु तोड़ रहा,
वह महा भयानक राक्षस-सा ॥

पर महावीर ने जाना जब,
इस उन्मद हाथी का वृतान्त ।

·······पर महावीर ने जाना जब, इस उन्मद हाथी का वृत्तान्त।
उत्पात जहां यह गज करता, पहुँचे उस थल निर्भय नितान्त॥

× × ×   × × ×   × × ×

वे सिंह सदृश केहरि सम्मुख, जा खड़े हुए भय-भाव-रहित।
मदमाता हाथी सूंड़ उठा, झपटा इन पर अति वेग-सहित॥
पर वीर सूंड़ से चढ़े शीघ्र, उसके मद विगलित मस्तक पर।
गज सहम गया मद भूल गया, पा शासन सन्मति का शिर पर॥

उत्पात जहाँ यह गज करता,
पहुँचे उस थल निर्भय नितान्त ।।
रोका सबने श्री सन्मति को,
पर वे न रुके साहसी अतुल ।
वे अभयदान नागर जन को,
देने को मन में थे आकुल ।।
वे सिंह सदृश केहरि-सम्मुख,
जा खड़े हुए भय भाव-रहित ।
मदमाता हाथी सूँड़ उठा,
झपटा इन पर अति वेग-सहित ।।
पर वीर सूँड़ से चढ़े शीघ्र,
उसके मद-विगलित मस्तक पर ।
गज सहम गया मद भूल गया,
पा शासन सन्मति का शिर पर ।।
दर्शक थे सब आश्चर्य चकित,
इस पौरुष साहस से विस्मित ।
कर उठे प्रशंसा भूरि-भूरि,
गज पर बैठे सन्मति सस्मित ।।
पहुँचाया गज को यथास्थान,
सन्मति फिर लौटे महलों में ।
माँ निकट खड़े वे विनयवान,
माँ हुई मुदित निज अन्तस में ।।

वे बोली—'बेटे कहाँ गए,
मैं तो तुमको थी देख रही।
गज मदोत्पात कर रहा यहाँ,
सुन कर तब से कुछ सोच रही॥

आशङ्का में मन डूबा था,
पर शकुन हो रहे पल प्रति पल।
इसलिए हृदय कुछ सन्तोषित,
पर बाट जोहता तब अविरल॥

'पर मां तव शकुन ठीक निकले,
मुझको कुछ ऐसा लगता है।
मैंने गज वश कर बन्द किया,
अब तो उत्पात न करता है॥'

'ऐं क्या कहते? 'तुमने' अच्छा,
तुम भला शान्त कब रह सकते?
ऐसे कामों को तो तुम हो,
बिन सोचे समझे ही करते॥'

'लेकिन मां जो तुम सोचो तो,
करि कर भीषण संहार रहा।
यदि किया न जाता वह वश तो,
कैसे टलती यह विपत्ति महा॥'

इतने में आए श्री नृपवर,
स्वागत सन्मति ने सहज किया।

आशीर्वाद तब भूपति ने,
अति हर्षित होकर उन्हें दिया ॥
बोले वे त्रिशला से, जाना—
सन्मति ने वह गज मतवाला ।
वश कर न सके जिसको योद्धा,
दृढ़ फीलवान, वश कर डाला ॥
हम मंत्रि प्रवर थे सोच रहे,
कैसे वश में गज किया जाय ।
पर साधन हो सब बिफल रहे,
कोई न सूझता था उपाय ॥'
'श्रीमन् कैसे हैं नृपति कि जो,
गज एक मत्त वश कर न सके ।
जिस पर सन्मति से बच्चे भी,
अपना शासन हैं जमा सके ॥
अब त्याग-पत्र दें नृप-पद से,
त्रिशला सव्यंग्य बोलीं ऐसे ।
तब कहा नृपति ने उत्तर में—
'तुम ठीक कह रहीं हो मुझसे ॥
मैं भी ऐसा हो सोच रहा,
सन्मति को राज-तिलक कर दूँ ।
लूँ मैं विराम अब शान्ति सहित,
तब सञ्चित अभिलाषा भर दूँ ॥

इस पर सन्मति कुछ कहने को,
पर कहा नृपति ने कुछ पहले ।
तब शान्त रहे शम वर्द्धमान,
वे शब्द न कोई थे बोले ॥

नृप थे उनसे बोले—'तुमने,
जीवन की कुछ परवाह न की ।
पर भला हुआ उत्पात-शमन,
बचगई जान अगणित जन की ॥'

ऐसे समयों पर वर्द्धमान,
प्रायः कुछ करते बात नहीं ।
वे तो शम दिखते हैं निरुपम,
उनमें उच्छृङ्खल-दृष्टि नहीं ॥

पर मात-पिता का मृदुल हृदय,
मन फूला नहीं समाता है ।
कारण इसका शायद लगता,
सुत होने का शुभ नाता है ॥

तदनन्तर थे दरबार गए,
सिद्धार्थ नृपति जब सन्मति संग ।
तो सबने स्वागत पूर्ण किया,
मानों ले कर नूतन उमंग ॥

नियमित कार्यों के बाद चली,
चर्चा उस केहरि घटना पर ।

'हैं धन्य कुमार किया वश गज',
वार्ता में बोले मंत्रि प्रवर ।।
पर मूक रहे वे विनयवान,
मृदु वर्द्धमान सुन निज बखान ।
अब अन्यमनस्क विलोक रहे,
वे द्वार पार कुछ आसमान ।।
पर बोला कोई नागर जन,
'उत्पात-शान्त शत धन्य इन्हें ।
अब अभय-मार्ग पर चलते सब
कह रहा लोक 'अतिवीर' इन्हें ।।

जनता के प्रिय बन गए 'वीर'
'महावीर' और 'अतिवीर' हुए ।
सन्मति किशोर यश-शोर हुआ,
चहुं ओर वीर गम्भीर हुए ।।

पंचम सर्ग

तरुणाई एवं विराग

तरुण विकसित मंजु तन में,
वेणु बजती भावना की ।
कौन हृदय खसोटता क्या ?
सुप्त रेखा वासना की ॥

कामना के गीत गाने को,
हृदय आकुल हुआ-सा ।
मधुर जग में सञ्चरण हित,
मन-विहग व्याकुल हुआ-सा ॥

कल्पना के सौम्य नभ में,
पंख मन-खग खोलता-सा ।
मुक्त उड़ने को इधर कुछ,
कुछ उधर वह डोलता-सा ॥

मदिर सरगम के सुरीले,
तार झन-झन कर उठे-से ।
और 'रुन-झुन' शब्द सुनने को,
मचलते भाव जैसे ॥

चाह की मृदु चांदनी है,
फैलती-सी उर-गगन में।
नाचता-सा मोर मन का,
हो मगन संसार-वन में॥
मोह - आकर्षण रंगीले,
जाल कुछ फैला रहे-से।
बांधने अभिलाष – पंक्षी,
कर रहे थे यत्न जैसे॥
किन्तु सन्मति सूक्ष्म दृष्टा,
देखते सब हो सजग-से।
चेतना में लीन सक्रिय,
विज्ञ यौवन आगमन से॥
जानते वे काम उग-सा,
है रहा मानव-पटल पर॥
सूक्ष्म और अदृश्य जिसको,
गीत रहा चुपचाप पग धर॥
प्रथम ऊषा की किरण-सा,
यह हृदय रंजित बनाता।
किन्तु भावी के लिये यह,
विश्व दलदल में फंसाता॥
'अहे यौवन! इन्द्रधनु-सी,
छिटकती तव छवि निराली।

नाच उठती कामना के,
नीर-तट पर मन-मराली ।।'

सोचते एकान्त में यों,
वर्द्धमान प्रशान्त मुद्रा ।
'यह जवानी है नशीली,
रच रही जो मदिर तंद्रा ।।'

शुद्ध 'मैं' का रूप कब है ?
यह नशा है धमनियों का ।
रक्त का उद्वेग कह लो,
यह स्वरूप न 'आतमा' का ।।

मोह, ममता, लोभ, रति, धन,
हुए हावी तरुण वय पर ।
आवरण नित डालते ये,
ज्ञान के शाश्वत निलय पर ।।

और प्राणी सोचता कब,
यह जवानी भी लुभानी ।
थिर न रह सकती कभी भी,
अथिर इसकी चिर कहानी ।।

हे जवानी ! किन्तु मुझको,
तू नहीं भरमा सकेगी ।
तू न मेरे मर्त्य तन में,
काम-तरु पनपा सकेगी ।।

क्योंकि मैंने है न खोया,
शुद्ध ज्ञान विवेक-साथी ।
अतः पास न आ सकेगा,
काम का उन्मत्त हाथी ॥

शुद्ध चेतन - भाव - नभ में
चेतना मेरी चढ़ेगी ।
कल्पना क्रियमाण बन कर,
त्याग पंखों पर उड़ेगी ।,

बँधा मेरा 'आतमा' जो,
देह की जड़ जेल में है ।
उसे निश्चय एक दिन तो,
मुक्त करना ही मुझे है ॥

मुझे लगता, हैं कि जब तक,
लोक - इच्छायें मधुरतम ।
कर्म कोल्हू में जुता हूं,
बैल-सा बनकर अधमतम ॥

अतः जग की एषणाऐं,
न्यूनतम करनी मुझे है ।
हे विषम पथ ! भाव मेरे,
दे रहे न्योता तुझे हैं ॥

मुझे अस्थिर रूप जगका,
दिख रहा चारों तरफ है ।

अरत परिवर्तन सभी के,
शीश पर चुप नाचता है॥
कहाँ हैं वे राम लक्ष्मण,
सती सीता-सी शिरोमणि।
वीर योद्धा, चक्रवर्ती,
हैं कहाँ उनकी मुकुट-मणि॥
काल के ही गाल में है,
भाल जीवन का हमारा।
तुहिन-कण-सा यह अथिर है,
रत्न जीवन का दुलारा॥
अतः निश्चित मृत्यु मुझको,
सब तरफ दिखला रही है।
हैं न इससे शरण जग में,
विश्व-गति यह गा रही है॥
पुण्य का सम्बल मिला तो,
शत्रु भी बन मित्र जाते।
पाप का आया उदय तो,
मित्रजन बन शत्रु जाते॥
इस तरह अशरण जगत सब,
शरण बस अरहन्त स्वामी।
क्योंकि मरना जीतने का,
मार्ग बतलाते अकामी॥

मुक्त हैं अरिहन्त पर मैं,
कर्म-कारा में बंधा हूं।
हुए जग से मुक्त इस विधि,
उन्हें नेता मानता हूं ॥

और जब संसार में मैं,
देखता हूं शान्त होकर।
तो मुझे लगता भ्रमण जग—
जीव करते क्लान्त होकर ॥

शान्ति जग में है कहां, रे!
है कहां चिर सौख्य-साधन।
जन्म में भी दुख दिखाता,
मृत्यु में उत्पात पीड़न ॥

तरुण वय का भी कुचलता,
शिर बुढ़ापा नित्य क्षण-क्षण।
फिर कहां संसार में सुख,
चेत रे! मम चेत रे मन!!

तू अकेला शुद्ध चेतन,
है न कोई साथ जग में।
है सगे साथी बने जो,
मोह में वे स्वार्थ—मग में ॥

जन्म में आया अकेला,
और जायेगा अकेला।

देख लो मन ! सत्य जग में,
कौन हो पाया दुकेला ।।
मात-पितु ये, इष्ट जन सब,
लोक-कथनी में सगे हैं ।
किन्तु मुझको भासता ये,
मोह-संसृति में पगे हैं ।।
जब किसी को कष्ट होता,
रे, असह इस मर्त्य तन में ।
कौन तब लेता बटा है,
भोगता वह आप मन में ।।
बात क्या है इष्ट जन की,
यह न देही भी हुई निज ।
कर रहे जिसकी सुश्रूषा,
अन्त में वह जायगी तज ।।
देह जड़ है मैं सु-चेतन,
वर्तमान विभाव परिणति ।
इसी कारण विश्व में हूं,
सह रहा मैं दुःख अगणित ।।
मोह वश संसार तन को,
नित्य अपना मानता है ।
आत्म रूप विसार कर,
वह दुःख रौरव भोगता है ।।

अहे ! चेतन का महा यों,
हो रहा अपमान निशि-दिन ।
और पोषित हो रहा है,
यह अरत घिनगेह जड़ तन ॥

वीर्य-रज से देह उपजी,
छीः अशुचि अवतार है यह ।
चर्म वेष्टित हाड़ मज्जा,
रक्त का आगार है यह ॥

कौन इससे घृणित अतिशय,
वस्तु जग में हो सकेगी ।
नौ मुखों से मैल बहता,
रात दिन क्या लाभ देगी ?

विष भरा जैसे कलश हो,
रोग शोकों का पिटारा ।
किन्तु फिर भी लीन इसमें,
जीव सहता दुख बिचारा ॥

मोह का पर्दा पड़ा है,
ज्ञान-ज्योति न मिल रही है ।
इस लिए इस जीव की तो,
भ्रमण की गति हो रही है ॥

भ्रमित देही देह के हित,
नवल इच्छाऐं संजोता ।

कर्म पुद्गल का निमंत्रण,
आस्रव यों नित्य होता ।।
सिवा कर्मों के न जग में,
और जो मम अहित कर ले।
कर्म का ही आगमन,
जो पुण्य पीड़ा में बदल दे ।।
भावनाऐं औ' क्रियायें,
खींचतीं हैं कर्म रहतीं ।
इसलिए सद्भावनायें,
सद्क्रियाऐं शुभ्र रहतीं ।।
मोक्ष के हित किन्तु हमको,
चाहिए सब कर्म का क्षय।
अतः आना रुक सके, रिपु—
कर्म का, हो दूर जग-भय ।।
पञ्च व्रत शीलापरिग्रह,
सत्य औ, अस्तेय, करुणा।
अनुसरण हो, पञ्च इन्द्रिय की,
विजय की बहे वरुणा ।।
इस तरह हों बन्द कर्मों के,
लिये निज क्रिया द्वारे ।
तभी संवर, हो सकेंगे,
बन्द आस्रव के किवारे ।।

बन्द जब आस्रव हुआ तो,
कर्म सञ्चित जो पुराने ।
साधना की अग्नि में वे,
तब तभी होंगे जलाने ॥
क्योंकि हो जाते किसी विधि,
यान में जब छिद्र किञ्चित ।
तो कुशलतम पोत चालक,
बन्द करता छिद्र निश्चित ॥
बाद में फिर पोत-बाहक,
फेंकता आया हुआ जल ।
इस तरह जल-यान करता,
ठीक, वह होता न बोझिल ॥
यों स्वचेतन-यान के सब,
बन्द आस्रव-द्वार करने ।
और सञ्चित कर्म-जल-कण,
निर्जरा से क्षार करने ॥
पार होगा इस तरह यह,
विश्व-जल से यान अपना ।
और पायेगा सहज हो,
मोक्ष-तट-चिर लक्ष्य अपना ॥
सोचता क्या लोक-रचना,
द्रव्य छः का खेल लगता ।

काल धर्माधर्म चेतन,
शून्य जड़ का योग दिखता ।।
एक पुद्गल दिख रहा है,
और द्रव्य अदृश्य सारे ।
किन्तु संसृति चल रही है,
एक दुसरे के सहारे ।।
नर्क पशु सुर मनुज गति में,
जीव मोही घूमते हैं ।
कर्म के अनुरूप अपना,
भाग्य नित ही ढालते हैं ।।
मोह के वश जीव-जड़ को,
भेद दृष्टि न समझ आये ।
कर्म—छिलका हटे चेतन,
धान से तो जन्म जाए ।।
ज्ञान सत् दुर्लभ जगत में,
भोग-सम्पति सब मिले हैं ।
पर यथार्थ सुबोध बिन तो,
भ्रान्ति वश जग में रुले हैं ।।
धर्म का बस एक सम्बल,
जो जगत से पार करता ।
वस्तु का निज रूप ही तो,
धर्म सत् है मुझे दिखता ।।

किन्तु जग में आज तो है,
धर्म की विकृति हुई अति ।
स्वार्थ-साधन बन रहा यह,
बलवती है हिंस्र जड़ मति ॥

दूर दुःस्थित यह करूंगा,
अब यही मन ठानता हूं ।
सत्य करुणा आत्म-निधि को,
धर्म सत् मैं मानता हूँ ॥

सही श्रद्धा ज्ञान चारित्र को,
त्रिवेणी जीव तुझको !
स्नात करके, यह करेगी,
दूर तेरे विश्व-मल को ॥'

इसलिये सन्मति स्वयं अब,
दूर भौतिक दृष्टि से हैं ।
तत्व की अनुपम तुला पर,
आत्म-निधि वे तौलते हैं ॥

प्राय एकाकी हुए वे,
भाव ऐसे ही संजोते ।
बाह्य आकर्षण रंगीले,
अब न किञ्चित भी रिझाते ॥

देख सन्मति की दशा यह,
मात-पितु कुछ सोचते थे ।

ये अभी से ही विरागी,
लग रहा है, हो रहे ज्यों ॥
है तरुण वय हुई इनकी,
ब्याह करना इष्ट हमको ।
बाद में दुस्तर बनेगा,
सच मनाना हमें इनको ॥
सौम्य-सा सम्बन्ध कोई,
ढूँढ़ने के हेतु कुछ जन ।
भेज नृपवर ने दिए हैं,
जो कुशल हैं मोदयुत मन ॥
वर्द्धमान स्वरूपबल की,
कीर्ति से थे सभी परिचित ।
निज सुता सम्बन्ध हित यों,
बहुत से नृप हुए उद्यत ॥
जबकि राजकुमारियों ने,
बात सन्मति को सुनी तब ।
सहज करने लगा उनका,
सरस मानस मदिर कलरव ॥
कामना के स्वप्न तो अब,
आ रहे बिन प्रकृत निन्द्रा ।
रक्त यौवन का मदिर यह,
मृदु नशीली मत्त तन्द्रा ॥

किन्तु नृप सिद्धार्थ त्रिशला—
ने सुना विवरण सभी का।
रूप, रँग, लावण्य, गुण को,
दृष्टि से विस्तार उनका ॥

तो कलिङ्गाधिप-सुता पर,
शुभ यशोदा नाम जिसका।
मुग्ध हो आया हृदय प्रति,
सुत-बधू-हित-हेतु उनका ॥

भाव त्रिशला और नृप के,
जब कलिङ्गाधीश ने भी।
ज्ञात कर पाये तभी वे,
शीघ्र आए ले शिविर भी ॥

नाम था जितशत्रु इनका,
निज सुता को साथ लाए।
देख जिसका रूप गुण,
सिद्धार्थ-त्रिसला मुस्कराए ॥

सुत-बधू के सम्वरण-हित,
वे सभी विधि से लुभाए।
प्रश्न पर यह बात कैसे,
कौन सन्मति को सुनाए ?

नृपति बोले, 'तुम्हीं त्रिसला !
वृत्त सन्मति को बताओ।

ग्रौर उनको किसी विधि भी,
ब्याह करने को मनाम्रो ।।
क्योंकि तुम ही साध सकती,
बात यह मेरी समझ में ।
मातृपद के जोर से तुम,
मना सकती हो तनिक में ।।'
'मैं अभी तैयार लेकिन,
आप भी आना वहाँ पर ।'
दिया उत्तर राशिवर ने—
'आपका क्या वह न सुत वर ?'
नृपति बोले विहँस, 'अच्छा,
रात जब होगी अभी तब ।
ब्याह का प्रस्ताव रखना,
वीर के सम्मुख सु-नीरव ।।
बाद में मैं आऊँगा तब,
पुष्टि करने को तुम्हारी ।
पूर्ण होगी इस तरह से,
समझता वाञ्छा हमारी ।।'
इस तरह अब रात का यह,
कार्यक्रम हो गया निश्चित ।
उधर नव तरुणी यशोदा,
निज शिविर में मुदित ग्रविदित ।।

रूप का अभिमान किञ्चित,
कर रहा अभिभूत उसको ।
बाह्य से वह कुछ लजाती,
पर अमित आह्लाद उसको ॥

'गए सन्मति घूमने को,
हैं अभी ही इसी पथ से ।'
शब्द उसके कर्ण-कुहरों,
में पड़े कुछ मञ्जु स्वर-से ॥

झनझनाये तार कोमल,
हृदय-वीणा के सिहर कर ।
पुनः आवर्तन उन्हीं का,
हो रहा उर में उमड़ कर ॥

ौर प्रत्यागमन - दर्शन,
हेतु इच्छा मुस्कराई ।
हृदय स्पन्दित हुआ-सा,
द्वार पर वह शीघ्र आई ॥

सान्ध्य-वेला में खड़ी निज,
शिविर के अब द्वार पर वह ।
कल्पना - हिन्दोल पर अब,
चुप खड़ी भी डोलती वह ॥

अरुण ऊषा-से मधुर कुछ,
थिरकते मृदु भाव उर पर ।

वर्द्धमान स्वरूप के कुछ,
चित्र बनते हृदय-पट पर ॥
कामना आकुल बनाती,
नव - मिलन इच्छा जगाकर ।
देखते सहसा कि सन्मति,
जा रहे गृह, पर्यटन कर ॥
दिव्य उन्नत भाल उनका,
सौम्य सुगठित कान्तिमय तन ।
किन्तु नत दृग किए जाते,
सोचते कुछ मौन मृदुमन ॥
निर्निमेष नयन-चषक से,
पिया सन्मति-रूप-रस कुछ ।
सोचती 'मुझको' यशोदा,
'देख पाये वे नहीं कुछ ॥
कौन कानन में विचरते,
हो गए वे दृष्टि-ओझल ।
हार क्यों मन मानता-सा,
टीस खाते भाव कोमल ॥
रूप क्या वह रूप था मम,
रूप से भी रूपमय कुछ ।
हीन मेरा रूप क्यों, पर–
दूसरों से श्रेष्ठतर कुछ ॥'

इन विकल्पों में यशोदा,
हो रही गुम-सुम हुई-सी ।
इधर सन्मति महल पहुंचे,
शान्ति-मुद्रा प्रशमता-सी ॥

रात का तम सघन-सा अब,
अस्त होता जा रहा है ।
चांद तारे हँसे नभ में,
समय बढ़ता जा रहा है ॥

वर्द्धमान स्व-कक्ष में थे,
सोचते बैठे हुए थे ।
आ गई सम्राज्ञि त्रिसला,
निरत विनयाचार में वे ॥

भक्ति से कर विनय स्वागत,
उच्च आसन पर बिठाया ।
स्नेहयुत आशीष - वादन,
मात से सुख-पूर्ण पाया ॥

प्रेम से बोलीं जननि मृदु—
'प्राय रहता सोचता-सा ।
तू अकेले में हुआ क्या,
मनन करता साधु जैसा ॥'

'कुछ नहीं जब-तब कभी मैं,
लोक क्या है ? स्वयं क्या हूं ?

इन्हीं प्रश्नों में रमा-सा,
सोचता रहता यहां हूं ॥'
'बन रहे तुम तो अभी से,
दार्शनिक-से इस जगत में ।
'नहीं इतने में कहीं से,
हो गया मां दार्शनिक मैं ॥'
किन्तु त्रिसला मृदुल बोलीं—
'वत्स, मेरे आश-दीपक !
एक चिर अभिलाष मेरी,
क्या भरोगे कुल-प्रदीपक ॥'
'कब नहीं आदेश मां तव,
कहो मैंने है निबाहा ।
मैं सदा निश्चित करूंगा,
आपने यदि उचित चाहा ॥'
'उचित' का बन्धन कहो क्या,
वत्स, तुमने यह लगाया ।
अन-उचित क्या कहूंगी, मम,
तुम्हीं में सब कुछ समाया ॥
सुत-वधू औ' पौत्र-दर्शन,
की हृदय चिर साध साधे ।
आज आया समय वह जब,
तू सफल मम आश कर दे ॥'

वीर विस्मत मुस्कराए,
'मोह का यह जाल कैसा ?
मात ममता आपकी यह,
कर रही जो प्रश्न ऐसा ॥'

आगए सिद्धार्थ नृप भी,
इसी वार्ता के कथन में ।
किया सन्मति ने विनययुत,
पितृ-स्वागत निज भवन में ॥

उन्हें भी दे उच्च आसन,
आप बैठे उचित थल पर ।
प्राप्त कर आशीष उनको,
था मुदित अतिवीर-अन्तर ॥

नृपति बोले, 'मोह, ममता,
की चली यह बात कैसी ।
तरुणमय सन्मति तुम्हारो,
फिर कहो कैसी उदासी ?'

कह रहे सन्मति, कि सहसा,
मात त्रिसला ने कहा यों—
'ब्याह का प्रस्ताव रक्खा,
वह अस्वीकृत किया है यों ॥

'वत्स ! कहते ठीक तुम हो,
जानता मैं भी यथा यह ।

आत्म, जग-कल्याण के हित,
हुआ सच ही जन्म तव यह ।।
तुम धरोगे साधु-दीक्षा,
समय पर पकने जरा दो ।
आदि तीर्थङ्कर ऋषभ वत,
पंथ अपना भी बना लो ।।
ऋषभ स्वामी ने प्रथम तो,
गृहस्थाश्रम ही बसाया ।
बाद में फिर त्यागकर—
आदर्श को भी था निभाया ।।
पिता उत्तर में कहा यों,
पुत्र प्रिय ने अति विनय युत ।
'ठीक, उनकी आयु पर थी,
तीन पल्यों की सु-विस्तृत ।।
किन्तु मेरी आयु उनसे,
चौथियाई भी नहीं है ।
काल का प्रतिफलन ऐसा,
अतः रुकना शुभ नहीं है ।।
किन्तु बोली मात त्रिसला—
'वत्स ! क्या पूरी न होगी ?
आश तव माता-पिता की,
क्या अधूरी ही रहेगी ?

'मात ! अब भी मोह युत हैं,
शब्द निकले आपके यह ।
मैं परिस्थितियाँ सभी कुछ,
आपके सन्मुख चुका कह ॥
जन्म इसी अनादि जग में,
रखे मैंने हैं अमित ही ।
हुये होंगे मात-पितु भी,
इस तरह मेरे बहुत ही ॥
वे कहां अब, मिट गए सब,
मोह किस-किस का निभाऊँ ?
सार क्या संसार में अब,
आपको क्या मैं बताऊँ ?
देवता भी इस मनुज के,
जन्म पाने को तरसते ।
क्योंकि नर तन प्राप्त करके,
साधु व्रत हैं पाल सकते ॥'
'पुत्र प्रिय यह बात कैसी,
विश्व सुन्दरि जो यशोदा ।
गुणवती मृदुभाषिणी वह,
जो बनेगी सर्व सुखदा ॥
तब सु-परिणय हित बुलाई,
वह कलिंगाधिप सहित है ।

फिर तुम्हारी बात यह क्या,
वस्तु-स्थित से रहित है ॥"
'व्यर्थ में ही श्री पिता जी,
कष्ट इतना है उठाया ।
बिना मेरी राय के क्यों,
आपने उसको बुलाया ॥
सोचता मैं और कुछ हूं,
कर रहे हैं आप कुछ यह ।
मैं धरूंगा साधु दीक्षा,
पूर्व निश्चय मम हुआ यह ॥
आज नारी इस जगत में,
रह गई बस भोग का रस ।
वानप्रस्थी रख रहे हैं,
भोग-हित युवतियां बश-बश ॥
हो रही हिंसा चतुर्दिक,
धर्म के ही नाम पर है ।
मांस लोलुप व्यक्तियों का,
सध रह यों स्वार्थ नित है ॥
दीन पीड़ित प्राणियों की,
वेदनायें चिर कराहें ।
कर रही आह्वान मेरा,
आज रौरव यातनायें ॥

यज्ञ के मिस हो रहा जो,
दुष्ट जन का स्वार्थ साधन ।
मुझे जिसका पूर्ण करना,
धर्म के ही पंथ विघटन ॥

मैं न हिंसा को मिटाना,
चाहता हूँ हिंस्र जल से ।
मैं बुझाऊँगा अनल यह,
मृदु अहिंसा के सलिल से ॥

अतः मुझको इष्ट अब है,
नहीं परिणय यह रचाना ।
ब्रह्मचर्यादर्श मुझको,
विश्व के हित है दिखाना ॥

मूक थी त्रिशला सुदेवी,
किन्तु नृपवर ने कहा यों ।
'राज्य का आदर्श भी तो,
तुम्हें रखना चाहिये यों ॥'

किन्तु सन्मति ने कहा यों,
'राज्य तो संसार बन्धन ।
नित बढ़ाता और रचता,
कर्म का यह जाल क्षण-क्षण ॥

राज्य लिप्सा, भोग लिप्सा,
मिटी किसकी इस जगत में ।

अग्नि यह वह जो धधकती,
हव्य हित हो हर समय में ॥

है बुझी कब प्यास तृष्णा,
प्राणियों की किसी विधि भी ।
ग्रहण करता सरित जल नित,
तृप्त पर जल-निधि कभी भी ॥

चक्रवर्ती भी नृपति गण,
कहां इस जग में रहे हैं ।
मृत्यु से ही हार खाकर,
अन्त में जग से गये हैं ॥

भाग्य से पाया कहीं यह,
मनुज-तन का उचित साधन ।
क्यों न फिर मैं कर्म-क्षय हित,
करूं मुनिव्रत का प्रसाधन ॥

इस तरह से जीव के हैं,
छूट सकते हैं कर्म सारे ।
पहुंच सकता इस तरह वह,
विश्व-जल-निधि के किनारे ॥'

नृपति त्रिशला देखते मुख,
मौन आपस में हुये अब ।
कहा नृप से किन्तु सहसा,
राजवर ने शान्त नीरव ॥

'आर्य ! अब तो व्यर्थ लगता,
ब्याह हित इनको मनाना ।
ये विरागी, रोककर अब,
व्यर्थ इनका दिल दुखाना ॥"

सुखी अब हो नहीं सकते,
ये गृहस्थी जाल में हैं ।
और इनको देख उन्मन,
हम न रह सकते सुखी हैं ॥"

'शुभे कहतीं ठीक इनका,
साम्य-ऋजुता के पगा मन ।
और भोगों के घृणित जग,
से भगा इनका सु-चेतन ॥

नीड़ शाश्वत प्राप्ति-हित ह्रद,
है हुआ इनका सु-जागृत ।
दुखी जीवों को सु-करुणा
दान देने को समुद्यत ॥

नृपति का सुन यह सुउत्तर,
राज्ञिवर बोली स्व-सुत से ।
'मैं नहीं अब रोक सकती,
पुत्र प्रिय तुमको सु-पथ से ॥

किन्तु ममता एक मेरी,
जग रही है कष्ट कैसे ।

तुम सहोगे शीत, वर्षा,
ग्रीष्म के दुख वज्र जैसे ॥'
'किन्तु मात विवेक शीला,
भूलतीं तुम इस जगत में ।
नर्क से दुख महा रौरव,
सह चुका बहु बार हूँ मैं,
ये न दुख उनके भयाभय,
मरण-जन्मों के जटिल से ।
फिर न माँ तव पुत्र ऐसा,
जो डरेगा संकटों से ॥'
'जानती सन्मति तुझे मैं,
जन्म से तू साहसी है ।
और तेरे धैर्य से ही,
बँध रही हिम्मत मुझे है ॥
मोह का आवेग सच यह,
जो कि निकले वचन ऐसे ।
तुम कहीं जाओ जगत में,
कामना बस रहो सुख से ॥'
कण्ठ भर आया सु-माँ का,
किन्तु साहस कर कहा यह ।
'केवली हो जब करोगे,
विश्व-हित, होगा सु-दिन वह ।

'धन्य माँ श्री ! धन्य' सहसा,
विनत सन्मति सहज बोले ।
धन्य आर्यादर्श महिला,
नृपति मुख से शब्द निकले ॥

भाव गद्गद् थे सभी के,
किन्तु नृप भर श्वांस बोले ।
'वत्स ! मम स्वीकृति, तुम्हारे–
हित सफलता द्वार खोले ॥

राज्ञि नृप किस हेतु श्राए,
श्रौर अब क्या हो गया है ।
है सु-बलिहारी समय की,
यह विचक्षण क्षण नया है ॥

'चिर ऋणी हूं श्रापका मैं,'
विनययुत थे वीर बोले ।
कहा तदनन्तर उन्होंने,
परम श्रद्धा भक्ति-घोले ॥

'धन्य पिता जी धन्य जननि मम
धन्य, धन्य श्रादर्श ललाम ।
धन्य भाग्य मम मिले श्राप सम,
मात-पिता अनुपम श्रभिराम ॥'

हो गया समरस सबेरा, फैलता आलोक ।
रागतम छिपता दिखाता, चिर विरति का लोक ॥
जागते अब नींद से सन्मति, कि उगता सूर्य ।
है लगा उनको बुलाते, साधना के तूर्य ॥
'ओम् सिद्धार्हन्त वन्दन,' शीश विनत सभक्ति ।
पूर्ववत् फिर जग उठी वह, भावपूर्ण विरक्ति ॥
चल धरूं अब साधु दीक्षा, सोचते यों वीर ।
जिन्दगी हो पूर्ण काटूं, कर्म की जञ्जीर ॥
धन्य मैं जो मात-पित ने, की मुदित स्वीकार ।
मम तपस्या-प्रार्थना भी अब न सोच-विचार ॥
कर रहे अब चिन्तवन यों, वीर निज में लीन ।
प्रशम लौकांतिक सुरपगण, आगए रति-हीन ॥
आ किया वन्दन विनय युत, शांत वे मतिमान ।
और बोले, 'धन्य स्वामिन् आप हैं धीवान ॥
आपने यह सत विचारा, है अथिर संसार ।
सार इसमें है नहीं कुछ, मोह का आगार ॥

आपने मुनिव्रत ग्रहण का, दृढ़ किया सु-विचार।
जन्म सार्थकता मनुज की, मोक्ष का यह द्वार ॥

है न मिलता यह मनुज भव बार-बार सदैव ।
साधना सम्भव इसी में यहीं मिटता दैव ॥

कर्म का वह आवरण जो, किये आत्म मलीन ।
साधना से यहां होते घातिका सब क्षीण ॥

आप स्वयं विवेक आलय, धन्य मानव-रत्न ।
जा रहे करने स्व-पर हित, प्राप्त दुर्गम यत्न ॥

काम को इस तरुण वय में, कर रहे विभु नष्ट ।
हो रहे आक्रांत जग-जन, है इसी से भ्रष्ट ॥

आपकी सद्दृष्टि अन्तर दूर सब दुर्भाव ।
साधना के हेतु केवल, जग रहा चित चाव ॥

आपके सद्भाव हमको, नाथ ! लाये खींच।
आप सचमुच हैं सफल जन, छोड़ते जग-कीच ॥

देव दर्शन आपके कर दूर इच्छा-भार ।
धन्य हम सौभाग्य पाया, 'दर्श' का उपहार ॥

आपसे निर्मल हमारे, भी बने सु-विचार।
है सहज जिससे सदा ही आत्म का उद्धार।

आगए सन्मति पिता-माँ, वे वहाँ पर साथ।
वीर सुरगण ने जिन्हें लख नत किये निज माथ ॥

देव बोले—'आप पितु-माँ के उभय आदर्श ।
धन्य, अनुमति आपने जो दी इन्हें सह-हर्ष ॥

ये धरेंगे साधु दीक्षा, आत्म में क्रियमाण।
आत्म हितकर ये करेंगे, विश्व का कल्याण।।'

मौन थे सन्मति कि बोले, भूपवर सिद्धार्थ।
'यह समझ हमने न रोका, स्व-पर कल्याणार्थ।।'

'आप हैं मतिमान नृपवर दूरदृष्टा विज्ञ।
है तभी इनको न रोका, आप देव न अज्ञ।।

देवगण ने नृपति-उत्तर में कही यह बात।
फिर कहा—'अब जा रहे हम स्वर्ग को अवदात।।'

और तदनन्तर किया फिर, भक्ति सहित प्रणाम।
नृपति, रानी, वीरवर को, सुर गये निष्काम।।

बाद लौकांतिक-गगन के, सुदृढ़ वीर विराग।
जग गया अब तो हृदय में, भाव समरस त्याग।।

वीर बोले—'पूज्य पितु-माँ, करूंगा प्रस्थान।
सोचता निज वस्तुओं को मैं करूं सब दान।।

नृपति बोले ठीक है यह, दान की सद्वृत्ति।
सोचते हम और भी कुछ दान दो सम्पत्ति।।

भूप त्रिशला, वीर के अब, इस सु-निश्चय रूप।
दानशालाएं गईं खुल, बहुत वृहत अनूप।।

मुक्त हाथों बट रहा है, दान चारों ओर।
दान-द्रव्यों का न फिर भी, आ रहा है छोर।।

पुस्त अब दर पुस्त तक को, प्राप्त सबको द्रव्य।
चल रही चर्चा चतुर्दिक, दान यह तो भव्य।।

वीर के वैराग्य का भी, प्रकट पुर में वृत्त ।
मोहवश व्याकुल हुए सब, नगर जन मृदु चित्त ।।
किन्तु सन्मति सौम्य मुद्रा, हृदय अति गम्भीर ।
निकट जिनके मोह युत जन, विगत मोह-समीर ।।
जब चले सन्मति विपिनि को, साथ उमड़ी भीड़ ।
ज्यों कि पंछी जा रहे हों, छोड़कर निज नीड़ ।।
करुण सागर-सा उमड़ता जा रहा चहुं ओर ।
मन व्यथित-से दिख रहे जन दुख रहा झकझोर ।।
वीर आकर्षण-खिचे से साथ जाते व्यक्ति ।
रोकने पर भी न रुकते वीर प्रति अनुरक्ति ।।
पगे उनमें जा रहे हैं, तरुण बालक वृद्ध ।
मोह तज पर वीर जाते, हृदय करने शुद्ध ।।
किंतु नायक का भला क्यों, व्यक्ति तज दे संग ?
चिर सहायक व्यक्ति को क्यों प्रीति कर दें भंग ?
जब कि पहुंचे नगर बाहर, लौटने के अर्थ ।
कहा सन्मति ने विनय युत, किंतु सब कुछ व्यर्थ ।।
साथ आये विदा करने मात-त्रिशला भूप ।
वचन कहने को समुद्यत, कण्ठ गद्‌गद् रूप ।।
अतः समरस शान्त सन्मति, ने कहा गम्भीर ।
'दूर पुर से आगए अब, लौटिये घर धीर ।।
योग और वियोग का तो, इस जगत में खेल ।
कब रहा संयोग सब कुछ, काल देता ठेल ।।

आप ज्ञानी सोचिये यह, मोह का उद्वेग ।
जो विकल कर रहा सबको, त्याज्य वह आवेग ।।

नृपति ने साहस सहित तब, कहा—'नागर बन्धु !
व्यर्थ अब तो है बढ़ाना, मोह का दुख-सिन्धु ।।

जा रहे यह तो सु-पथ पर, है न दुख की बात ।
चिह्न इनके त्याग के कुछ, जन्म से ही ज्ञात ।।

आज आया समय वह जब, यह रहे सब त्याग ।
जा रहे क्रियमाण करने, सफल विश्व विराग ।।

भूप को यह बात सुन कर, मौन थे सब लोग ।
दिख रहे अति तुच्छ सबको, अब जगत के भोग ।।

मात त्रिशला ने कहा तब, धार उर में धीर ।
'तुम सफल हो कामना बस, यही अन्तिम वीर ।।

'धन्य ओ माता-पिता तव ज्ञान पूर्ण विवेक ।
धन्य मैं हूं आपको पा, सफल जन्म अनेक ।।

क्षमा त्रुटियाँ कीजिये सब, सब जान अपना बाल ।'
कर रहे जब बात यह सुर आ गए तत्काल ।।

पुष्प वर्षा हुई नभ से, वीर का जयनाद ।
प्रति-ध्वनित तब किया सबने, गुञ्जरित सुनिनाद ।।

किंतु समरस आत्म-द्रष्टा, वीर ने सविवेक ।
सौम्य अमृत-रस-घुले-से, कहे शब्द कुछेक ।।

'सूर्य ढलता जा रहा अब, लौटिये जन-वृन्द ।
तोड़िए अब तो सु-जन जन मोह के दृढ़ फंद ।।

धार तदनन्तर उन्होंने, मां-पिता प्रति भक्ति।
किया अंतिम विदा वादन क्षीण ममता-शक्ति।
दिया आशिष मां-पिता ने, 'हो सफल मम पुत्र !
लक्ष्य हो तव पूर्ण जीवन—का खिले शतपत्र ॥'

शेष पुरजन से विदा भी, माँग कर श्री वीर।
थे समुद्यत वन-गमन को, हृदय अति गम्भीर॥
इन्द्र ने इतने समय में, पालकी अभिराम।
की उपस्थित था कि जिसका, चन्द्रप्रभ शुभ नाम॥

वीर किञ्चित मुस्कराये, और बोले 'इन्द्र !
कष्ट इतना कर रहे क्यों, आप सौम्य सुरेन्द्र !'
इन्द्र बोला—आपका यह सुभग-सुकृत-प्रभाव।
जो कि मेरे हुए आने के यहाँ सद्भाव॥

राज्य जिसके लिए करते व्यक्ति हैं उत्पात।
भरत-बाहूबली कि जिसके हित लड़े हो भ्रात॥
तथा कैकेयी जननि ने, स्व-सुत-हित कर आश।
दिया रघुवर को चतुर्दश, वर्ष का बनवास॥

महाभारत का समर भी, राज्य के ही अर्थ।
हुआ जिसमें हुए अगणित, दर्दनाक अनर्थ॥
उसे छिनकी रेंट-सा तज, जा रहे हैं आप।
देव ! इससे और गुरुतर बात क्या निष्पाप॥

धन्य है निज भाग्य पाया, जो कि ऐसा योग।
आपके दर्शन सुश्रूषा, का मिला संयोग।

इन्द्र आग्रह देखकर, श्री वीर बैठे शांत।
चन्द्रप्रभ पालकी भीतर, सौम्य अद्भुत कांति॥

हुए जय के नाद सहसा, गुञ्जरित भू-व्योम।
उच्च यह उद्घोष, बोले ज्यों सभी के रोम॥

श्याम दशमी माह मगसिर, की सु—सांध्य ललाम।
चल दिए बन पालकी में, वीरवर निष्काम॥

और लौटे स्व-पुर नागर, नृपति राज्ञी साथ।
किन्तु त्रिशला-नन्द सन्मति, अब न उनके साथ॥

थी विचित्र दशा सभी की, जा रहे मतिमान।
कभी आकुल कभी समरस, ज्ञान कभी अज्ञान॥

उधर समतापूर्ण सन्मति, जा रहे गतिमान।
ज्ञातृखण्ड-सुविपिन पहुंचे, कामहत धृतिवान॥

हुए त्यागी त्याग भूषण, वस्त्र वे दिग्वेष।
और लुंचित किए सारे, पंचमुष्ठी केश॥

'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कह वह शिला पर शांत।
मुख किये उत्तर विराजे, वीरवर सम्भ्रान्त॥

सांध्य का ढलता समय यह, स्वर्ण सा स्वयमेव।
विनय वंदन कर गये वे, स्वर्ग को सब देव॥

अब परिग्रह का न सन्मति-पर रहा कुछ लेश।
मान, माया, लोभ, रति, भय आदि सब निःशेष॥

सूर्य अस्तंगत हुआ-सा, फैलता तम-जाल।
वीर थे पर साधना-रत, भूल सब जग—हाल॥

वे वहाँ बैठे अचल-से, मूक नीरव गात।
ध्यान ही साकार हो ज्यों ध्यान में निष्णात ॥

आत्मिक सत् दृष्टि उनको, बाह्य दृष्टि विहीन।
आ रहे अब हैं न उर में, भाव कियत मलीन ॥

सघन होती जा रही है, अब अँधेरी रात।
किन्तु सन्मति के लिये यह, है न भय की बात ॥

वे नहीं उद्विग्न किञ्चित, कर रहे कुछ याद।
ले रहे वे तो अलौकिक आतम का सुख-स्वाद ॥

समय जैसे बढ़ रहा है, जम रहा है ध्यान।
वीर का अन्तर्जगत है शांत साम्य महान ॥

ध्यान में आरूढ़ इनको देख कुछ निष्पन्द।
तारिकाएँ क्या गगन में मुस्कराती मन्द ॥

किंतु सन्मति के नयन तो, रूप जग से बंद।
वे न सुनते अब तनिक भी, लोक के छवि-छंद ॥

भूख-प्यास न तनिक उर में, कर सकी कुछ खेद।
भूल कर सब ध्यान में रम, भाव हैं निर्वेद ॥

रात आई ज्योंकि इनको, जो डराने हेतु।
जा रही निष्फल न पाया चिर विजय का केतु ॥

छा रही प्राची क्षितिज पर, लालिमा मुस्कान।
रवि उदय की स्वर्ण किरणें, फैलती अम्लान ॥

कर रहीं जो वीर का ज्यों, हैं सुभग अभिवाद।
किंतु सन्मति लीन योगी दूर हर्ष-विषाद ॥

सूर्य-किरणालोक में मुख, कांति पूर्णापूर्व ।
साम्य-दिनकर ज्योतिमय-सा, छवि न ऐसी पूर्व ॥

फुदकते से गा रहे अब, खग प्रभाती गान ।
किन्तु सन्मति को न कुछ भी, लोक का है भान ॥

तीन दिन के ध्यान का था, शुभ किया संकल्प ।
एक आसन में वहीं दृढ़, कर रहे अविकल्प ॥

भ्रू न हिलती दृष्टि भी थिर—नाशिका के अग्र ।
आधि व्याधि उपाधि उनको, कर न पाई व्यग्र ॥

समय भगता जा रहा है, ध्यान में वे लीन ।
कर्म का आना रुका हैं, ऐषणाएँ क्षीण ॥

हो गई पूरी अवधि अब, तीन दिन की सर्व ।
दृग प्रशम वे पारणा-हित, चल दिए बिन गर्व ॥

समिति ईर्या पालते वे, जीव-रक्षा-भाव ।
दब न जायें जन्तु लघु भी, हा न उनके घाव ॥

बिन निमंत्रण ही चले वे, पारणा के अर्थ ।
ध्यान उनको निज क्रिया से हो न घटित अनर्थ ॥

जा रहे उस ओर अब वे, है जिधर कुलग्राम ।
ज्ञातृ कुलनायक जहाँ के भूप का है नाम ॥

कुल नृपति ने भक्तियुत हो कर सविधि सु-विचार ।
था दिया सन्मति सु-मुनि को, क्षीर रस आहार ॥

कर रहे जब पारणा विभु, देव दुन्दुभिनाद ।
पुष्प—वर्षा, रत्न-वर्षा और जय जय नाद ॥

हो उठा सहसा वहां पर, दिव्य यह सौन्दर्य।
लो बहा सुरभित मरुत भी, पञ्च ये आश्चर्य ॥

धन्य कुल नृप ने दिया जो, शुद्ध शुभ आहार।
वीर से सत्पात्र मुनि को, धन्य यह सत्कार ॥

पारणा पश्चात लेकिन, बन गए मुनि वीर।
साधना में रत हुए जा, वे कहीं धर धीर ॥

ध्यान करते एक स्थल पर, तीन दिन गम्भीर।
फिर भ्रमण कर दूसरे थल, जा पहुंचते वीर ॥

इस तरह दृढ़ मोह बन्धन, हो न पाते पुष्ट।
इस तरह सम प्राय रहता, सौम्य जीवन-पृष्ठ ॥

किन्तु वर्षा काल में वे, एक ही हाँ स्थान।
चार मासों तक निरन्तर, साधते हैं ध्यान ॥

हो विराधित नहीं जिससे, जीव-राशि अपार।
कीट-कृमि, तरु-घास का जो, रूप लेती धार ॥

और जिससे कर्म आश्रव, हो न कुछ अनजान।
इसलिये करते न मुनिवर, अन्य स्थान प्रयाण ॥

वीर करते साधना सब, भूल जग-जंजाल।
यातनायें भी न उनको, कर सकीं बेहाल ॥

भूख की पीड़ा न उनका, कर सकी कुछ ह्रास।
मास छः छः मास के वे, माड़ते उपवास ॥

पर क्षुधा भी थी न उन पर, पा सकी कुछ जीत।
क्षीण होता था कलेवर, पर न मन भयभीत ॥

आत्म-दृष्टा जानते वे, नाशवान शरीर।
आत्म निज शाश्वत सदा ही, फिर बनूं न अधीर॥

इसीविधि ही सोचकर वे, जीतते हैं प्यास।
सूखता जब कण्ठ होते, तब न तनिक उदास॥

वेदनीय दु-कर्म का यह, जानते विस्तार।
है जिसे करना उन्हें यों, आत्म से ही क्षार॥

जब कि जाड़े हैं कड़ाके की गिराते शीत।
सिकुड़ते जन जब कि कहते, 'है विकट यह शीत॥'

जब कि जमती नदी, होती उपल की भी वृष्टि।
जब नहीं कोहरे को भी, पार करती दृष्टि॥

अग्नि की जब शरण लेते, वस्त्र पहने व्यक्ति।
और सी-सी तदपि करते, स्व-तन में अनुरक्ति॥

योगि सन्मति सरित-सर-तट, माढ़ते तब योग।
पूर्व के यों कर्म-मल का मेटते संयोग॥

और जब है ग्रीष्म आती, भूमि बनती तप्त।
सूखते सर-नदी-नाले, सलिल होता लुप्त॥

सूर्य किरणें ज्वलित शोलों—सी बरसतीं उग्र।
विहग भगते छोड़ अण्डे, प्यास में अति व्यग्र॥

जब कि चलती अनल-सी लू, झुलसता संसार।
जब न करते मनुज, पशु, खग एक पग संचार॥

वीर तब संतप्त गिरि-शिर, धारते हैं ध्यान।
पूर्व कर्मों के समिधि को, दग्ध करते जान॥

डाँस, मच्छर, कनखजूरे, सदा देते त्रास।
पर न सन्मति कभी भरते, दुख भरा उच्छ्वास ॥

शेर चीते लकडभग्गे, हिंस्र जन्तु बिहार।
कर न पाता कभी उनमें, भीति का सञ्चार ॥

सौम्य मुद्रा और उनका, परम ऋजु आचार।
सर्वहित करुणा सभी में, वैर करती क्षार ॥

कहीं मच्छर काट ले तो, व्यक्ति कहते 'क्लेश'।
वीर होते पर न बेकल, लोक-बुद्धि न शेष ॥

बाह्य-भीतर से परिग्रह, ग्रन्थि-हत दिग्वेष ।
वासना के चिह्न उनमें, थे न किंचित शेष ॥

बाल से वे निर्विकारी, कामनाएँ भूल ।
नग्न रहते परिग्रह तज, दुःख का जो मूल ॥

वासना रहती हृदय में, और बाहर लाज ।
धर न पाता अतः दीक्षा नग्न लोक-समाज ॥

किंतु सन्मति आत्म-शासक, विगत इच्छा काम।
मानवी कमजोरियों पर, विजय वे अभिराम ॥

योग और वियोग में वे सदा समरस भाव।
अरतिमय उनका हृदय-मन, प्रशम सम्यक् भाव ॥

मोहनीय चरित्र कर्मावरण यों चकचूर ।
किया करते नित्य सन्मति, यत्न यों भरपूर ॥

रमणियों में वानप्रस्थी, भी बने अनुरक्त।
बात क्या फिर अन्य की पर वीर पूर्ण विरक्त ॥

रूपसी-सौन्दर्य वैभव, पर न सन्मति मुग्ध।
धवल उनका चरित पावन, श्वेत-सा ज्यों दुग्ध॥

वीर चर्या के विकट दुख भोगते सम-भाव।
घूमते जो पालकी में, आज नंगे पाँव॥

मार्ग कंकड़ और पत्थर, शूल से आकीर्ण।
अभय चलते पैर होते, कहीं पूर्ण विदीर्ण॥

किन्तु सन्मति को न इसकी, ओर कुछ भी ध्यान।
निरत होते साधना में, हृदय ऋजु अम्लान॥

साधना में एक आसन में सदा आसीन।
कभी बिचलित वे न होते, कष्ट के आधीन॥

एक आसन माढ़ लेते, गिरि सदृश निष्कम्प।
चलित उनको कर न पाता, प्रबलतर भूकम्प॥

कभी हैं वे खड़े होते, अचल कायोत्सर्ग।
निर्जरा करते प्रशम सह प्रबल कटु उपसर्ग॥

फूल-सी मृदु सेज पर जो, शयन करते नित्य।
तथा जिनकी व्यवस्था में, लगे रहते भृत्य॥

अब कभी वे रात भर भी, शिला पर आसीन।
भूलकर विश्राम, रहते आत्म-चिन्तन-लीन॥

कभी पिछले प्रहर निशि में, सजग सोते शान्त।
एक करवट से सदा वे, पर न किंचित क्लान्त॥

वेदनीय दु-कर्म का यों, मेटते वे लेख।
और निर्मल आत्म–पद को, खींचते हैं रेख॥

कोप का आवेग उनको, कर न पाता उग्र ।
शान्त हृदय पयोध-सा होता न कुछ भी व्यग्र ।।
कोप-कारण भी न उनमें, उगा पाता क्रोध ।
क्रोध-अवसर पर सदा वे, हृदय लेते शोध ।।

सबल होकर भी न उनमें, दृष्टिगत आक्रोष ।
साधु जीवन का सु-सहचर, हैं सुभग सन्तोष ।।
अन्य लेकिन कोप के वश, उन्हें देते त्रास ।
पर न बदला-क्षोभ से वे, छोड़ते निश्वास ।।

द्वेष या अज्ञान के वश पीटते जब लोग ।
पूर्व अघ-हृत-समय सन्मति समझ धरते योग ।।
महा भीषण यातनाएं, क्रूर वज्र प्रहार ।
डिगा न पाते पर न उनको, दुष्ट कष्ट अपार ।।

मांगते किञ्चित नहीं वे, किसी से कुछ द्रव्य ।
गुरु अभावों में प्रशम वे साधना यह दिव्य ।।
भूख का आवेग हो या हो जटिल तम: प्यास ।
याचना फिर भी न करते, शांत सहते त्रास ।।

याचना करना बहुत ही दूर की है बात ।
मांगने के भाव तक को, लग न पाती घात ।।
पारणा में यदि कभी भी, हुआ पूर्ण अलाभ ।
तो न वे उद्विग्न मुख पर पूर्ववत अमिताभ ।।

अन्तराय दुकर्म का यह जानते परिणाम ।
यों न कहते कुछ किसी से, अन्तरंग अकाम ।।

खेद किञ्चित भी न करते, भाव से गम्भीर।
और लाभालाभ में यों, सौम्य समरस वीर।

यदि असाता के उदय में, होगई कुछ व्याधि।
तो न वे तजते कभी भी, आत्म-योग समाधि ॥

रोग का आक्रोष उनमें ला न पाता शोक।
मग्न निज में प्राप्तकर कुछ, आत्म-निधि का लोक ॥

वेदना के कर्म को वे किया करते ध्वस्त।
आत्म से तन भिन्न लखकर, आत्म-चिन्तन व्यस्त ॥

गमन करते कहीं चुभता, पैर में यदि शूल।
तो न उसकी व्यथा में कुछ, सोचते प्रतिकूल।

आँख में तिनका पड़ा तो, है न कुछ परवाह।
चोट लगने पर तनिक भी, हैं न करते आह ॥

जान तन को भिन्न निज से, भूलते दुख-भार।
ध्यान में ही लीन रहते, आत्म-कोष निहार ॥

मैल जम जाता स्व-तन पर, पर न करते ग्लानि।
लीन तप में वे न पाते, आत्म-निधि की हानि ॥

डाल दे यदि धूल कोई, तो न हो उद्विग्न।
स्वच्छ कोई तन करे तो, भी न सुख में मग्न ॥

भग्न उनका मान कर दो, तो न कुछ परवाह।
मान पाने की न उनमें, उमगती चित चाह ॥

सोचते वे यों न, है मम उच्च तप बल ज्ञान।
विश्व जन अब तो करें मम श्रेष्टतम सम्मान ॥

मान या अपमान को यों, है न कोई वृत्ति ।
सौम्य समतामय सादा ही पंथ है निर्वृत्ति ।।

प्रौढ़ प्रज्ञा भी न उनमें, ला सकी अभिमान ।
ऋद्धियों या सिद्धियों का, भी न उनको भान ।।

ज्ञान पाते जा रहे लेकिन, न करते गर्व ।
विश्व-जन लघु ज्ञान पा भी फूलते हैं सर्व ।।

कर रहे तप दृढ़ जटिलतम, पूर्ण करने ज्ञान ।
पर न केवल ज्ञान पाते, हैं न वे भ्रममान ।।

सोचते अज्ञानकर्ता, कर्म हैं बलवान ।
तप न जिसको नष्ट करता, और दृढ़ हो ध्यान ।।

अतः ज्ञानावरण-कारक समिधि प्रबल अपार ।
सबल तप-ज्वाला जलाकर, उसे करते क्षार ।।

धर्म-पथ वे चल रहे जो, आत्म वस्तु स्वरूप ।
वे न शङ्का कियत करते, सत्य श्रद्धा रूप ।।

धर्म करते चपल जग-जन, स्वार्थ से संलग्न ।
प्राप्त फल होता न, होते, तो न तोष-निमग्न ।।

हीन साधन पर न करते स्वयं शांत विचार ।
धर्म को दोषी बताते, भ्रष्टतम आचार ।।

पा न सन्मति सिद्ध, लाते पर न तुच्छ विचार ।
आत्म अन्वेषण किया करते स्व-त्रुटि परिहार ।।

दृढ़ तपस्या और करते कर्म करने विद्ध ।
आत्म निर्मल कर उन्हें तो, आप होना सिद्ध ।।

एक दिन ध्यानस्थ सन्मति, पास ग्राम कुमार ।
बैल ले आ रहा कोई, ग्वाल मग्न विचार ॥

कार्य इसको याद कोई, आ गया तत्काल ।
देख सन्मति को वहां तब, शीघ्र बोला ग्वाल ॥

'जा रहा मैं गाँव को हूं—कार्य है अनिवार्य ।
देखना मम बैल, आता पूर्ण कर निज कार्य ॥

मौन पर सन्मति न बोले—ध्यान में रत भाव ।
समझ सम्मति छोड़ युग वृष, वह गया निज गाँव ॥

बैल लेकिन हुए ओझल, कहीं चरते घास ।
ग्वाल आया तब न देखे, बैल सन्मति पास ॥

ध्यान में रत वीर अब भी, ग्वाल पर अति क्रुद्ध ।
सोचने वह कुछ लगा विन, बैल वह हतबुद्ध ॥

दूर तक वह देख आया, खोज पर सब व्यर्थ ।
कह रहा उसका हृदय 'यह हाय महा अनर्थ ॥

बिना बैलों के न मेरा, चल सकेगा काम ।
खांयगे क्या बाल मेरे, मात्र प्रभु का नाम ॥

भासता कुछ बैल मेरे, ले गये हैं चोर ।
क्या इसी का ढोंग, चोरों का यही शिरमौर ॥

छद्मवेषी घात में रहता यहाँ दिन-रात ।
चोर चेले ले सटकते, माल ऐसी बात ॥

देख अब भी बैल दे दे, है नहीं कुछ बात ।
अन्यथा सहना तुझे होगा प्रबल आघात ॥'

मौन व्रत में लीन उत्तर में अतः निःशब्द ।
ग्वाल उत्तेजित हुआ कहने लगा अपशब्द ॥

कान में ठोका नुकीला, दण्ड जब सुविशाल ।
पर निरर्थक बज्र-तन में, वे अचल उस काल ॥

वेदनाकृत कर्म सञ्चित, कर रहे यों नष्ट ।
ग्वाल भी आश्चर्ययुत-सा, देख तप में निष्ट ॥

बैल उसको कुछ दिखाए, झाड़ियों के पास ।
चर रहे गरदन झुकाये, जो हरित-सी घास ॥

झट-गया बैलों निकट वह, भूलकर सब कृत्य ॥
कर रहा परिताप अब वह, 'क्यों किया दुष्कृत्य ?'

बैल ले आया जहाँ पर, वीरवर ध्यानस्थ ।
शीघ्र ही उसने निकाला, दण्ड जो श्रवणस्थ ॥

फिर क्षमा की याचना की, ग्वाल ने नत शीश ।
पर तपस्या लीन सन्मति, द्वेष विगत मुनीश ॥

एक दिन सन्मति चले श्वेताम्बि थल की ओर ।
भूमि पर थी दृष्टि उनकी शोधते हर ठौर ॥

जा रहे कारुण्य उर में, सौम्य नीरव गात ।
ग्वाल-बालों ने कही तब, तब मार्ग में यह बात ॥

'देव ! करिए इस न पथ पर, आप तनिक विहार ।
मार्ग में है चण्डकौशिक, सर्प का सञ्चार ॥

दृष्टविष इस सर्प कारण, भस्म होते जीव ।
विष भरा वातावरण सब, विषमयी निर्जीव ॥

चण्ड कौशिक सर्प इनको, देख क्रुद्ध अपार ।
भर उठा भीषण धुआँ-सी, विषमयी फुङ्कार ॥
लो. विषैला हो गया थल, वृक्ष का पतझार ।
कर सका पर आत्म-योगी का न वह अपकार ॥
और इस पर क्रुद्ध विषधर, जान अपनी हार ।
वह चला करने जटिलतम, दंश का दुर्वार ॥
पर न इसमें लच सकी वह आत्म-शक्ति असीम ।
योग में सब शान्त होते मणु ज्वलित निस्सीम ॥

जबकि भरता वह भयंकर, प्राण-हर फुफकार।
तब विहग, पशु और नर-तन, शीघ्र होते क्षार ॥
इसलिए उस ओर जाता है न कोई पात्र ।
जा सकी उस ओर बस वह, वायु गतिमय मात्र ॥'

वीर किञ्चित मुस्कराये, फिर हुए गतिमान।
प्रान्त वह करने अभय वे. चल दिये धृतिवान ॥
सोचते-विषधर भयङ्कर, किन्तु है बलवान ।
क्रूरता उसकी नशे तो, हो अमित कल्याण ॥

प्राणियों के ध्वंश में जो, शक्ति होती नष्ट ।
वह न बदली जा सके क्या, आत्म, जग के इष्ट ॥
मैं डरूँ क्यों आत्म चिर है, देह जड़ है और।
जो कि निश्चय नष्ट होगी, काल का है कौर।'

सोचते यों ही गए उस, मार्ग पर अतिवीर।
नाग-बिल सन्निकट जा तप-रत हुए गम्भीर ॥
'चण्डकौशिक सर्प इनको, देख क्रुद्ध अपार।
भर उठा भीषण धुआँ-सी, विषमयी फुङ्कार ॥

लो विषैला हो गया थल, वृक्ष का पतझार।
कर सका पर आत्म योगी, का न वह अपकार ॥
और इस पर क्रुद्ध विष धर, जान अपनी हार।
वह चला करने जटिलतम, दन्त का दुर्वार ॥

पर न इससे लच सकी वह, आत्म-शक्ति असीम।
योग में सब शान्त होते, अणु ज्वलित निस्सीम ॥

देख निष्फल सर्व निज बल, वह हुआ हत बुद्ध ।
देखता सन्मति सु-मुख को, जोकि ऋजु शम शुद्ध ॥

वह विनत फण भक्ति जागी, वीर प्रति अभिराम ।
सुन रहा कुछ शब्द ज्यों अब, कर्ण में निज नाम ॥

'भव्य प्राणी पूर्व दुष्कृत, वश हुए तुम सर्प ।
छोड़ दो सब क्रूरता तुम, छोड़ दो अब दर्प ॥

यों करो कल्याण अपना, आत्म का उद्धार ।'
देखता वह कर रहे अब, योगिराट विहार ॥

और इस दिन से कभी वह, है न होता क्रुद्ध ।
सत्प्रकृति उसकी दिखाई दे रही अविरुद्ध ॥

फिर गये उस प्रांत सन्मति, लाढ़ जिसका नाम ।
साधना में रत हुए, वे मौन हैं निष्काम ॥

बस रहीं कुछ जातियां हैं, हिंस्र दुष्टानार्य ।
वे समझतीं शत्रु उनको, जातियां जो आर्य ॥

देख सन्मति को वहां पर क्रूर जन अति क्रुद्ध ।
कर उठे दुष्टाचरण वे शीघ्र वीर विरुद्ध ॥

एक दिन तो वीर पर छोड़े शिकारी श्वान ।
पर न किञ्चित वीर चंचल, वे निरत निज ध्यान ॥

और जितने त्रास सम्भव, दे रहे सब क्रूर ।
अन्त में देखा कि ऋषिवर, द्वेष से पर दूर ॥

भूल सहसा ही गए वे, क्रूरता का भाव ।
दिख रहा अब तो अहिंसा प्रति हुआ कुछ चाव ॥

वीर की यह साधना, सम भाव होती मूक ।
पर सुनाई है यहाँ पढ़ती मनुजता-कूक ॥

जिन भ्रमण में वीर कौशाम्बी नगर के पास ।
शान्त पहुंचे घूमते वे, मेटते जग–त्रास ।

सौम्य कौशाम्बी नगर में, पारणा के अर्थ ।
थे चले सन्मति सकारण, घूमते न निरर्थ ॥

देख महिला दुर्दशा, दासत्व का उपहास ।
नारियों का बेचना, हा ! यह मनुज का ह्रास ॥

वीर ने ली यह प्रतिज्ञा, आज का आहार ।
मैं करूँ दासी तिरस्कृत, के यहाँ स्वीकार ॥

जो कि बन्धन में पड़ी हो, शिर मुड़ा बिन बाल ।
मूक रोती-सी कि जिसका, हो बुरा यों हाल ॥

और कोदों नाज का बस, दे मुझे आहार ।
आज उसका भक्तियुत, स्वीकार हो उपहार ॥

जा रहे अब वीर पुर में, बोलते जय लोग ।
सोचते आहार देने का मिलेगा योग ॥

किन्तु राजा और सेठों के ग्रहों के द्वार ।
वीरवर है छोड़ जाते, आज तो हर वार ॥

चन्दना दासी कि जिसके, थे मुड़े सब केश ।
सेठ वृषभसेन-पत्नी ने किया दुर्वेश ॥

बन्धनों में ग्रस्त दुखिया, सुन रही जयकार ।
पारणा-हित वीर समझी, आ रहें इस द्वार ॥

भाव स्वयमाहार देने, के हुए उत्पन्न।
किंतु उसके पास था वह, मात्र कोदों अन्न॥

पारणा लेकिन कराने, का किया सु-विचार।
भक्तिवश आहार देने, को खड़ी तैयार॥

पूर्ण हर्षोल्लास मुख पर, दिख रहा सुखपूर्ण।
वीर आये इस तरफ भी, शान्ति शम—परिपूर्ण॥

भक्ति से पड़गा उठी वह, सौम्य श्रद्धाभाव।
विभु रुके क्षण बढ़े फिर वह, कौन सा दुर्भाव?

रो उठी अब चन्दना, वह कोसती निज भाग्य।
दे न वह आहार पाई, कौन-सा दुर्भाग्य?

वीर ने जा दूर देखा, घूम पीछे-ओर।
रो रही वह चन्दना है, दुख रहा झकझोर॥

शीघ्र लौटे वीर स्वामी, पूर्ण रुदनाभाव।
निज प्रतिज्ञा रूप अब तो, दिख रहे सब भाव॥

वीर लेने को समुद्यत, इसलिए आहार।
बेड़ियां सब आप टूटीं, पुण्य का संचार॥

कर रहे हैं पारणा अब, वीर समता भाव।
दिव्य पञ्चाश्चर्य दर्शित, यह सु-कृत सद्भाव॥

आज दासी हाथ प्रभु ने, जो लिया आहार।
हो गई यों क्रान्ति जग में, दीन महिलोद्धार॥

वीरवर लेकिन गए बन, साधना के हेतु।
बांधने वे इस जगत से, मुक्ति तक का सेतु॥

चन्दना दासी कि जिसके थे मुँड़े सब केश।
सेठ वृषभसेन-पत्नी ने किया दुर्वेश॥

बन्धनों में पड़ी दुखिया, सुन रही जयकार।
पारणा हित-वीर, समझी आ रहे इस द्वार॥

भाव स्वयमाहार देने के हुए उत्पन्न।
किन्तु उसके पास था वह मात्र कोदो अन्न॥

× × ×　　× × ×　　× × ×

वीर लेने को समुद्यत भक्तियुत आहार।
बेड़ियां सब आप टूटीं पुण्य का संचार॥

× × ×　　× × ×　　× × ×

आज दासी-हाथ प्रभु ने जो लिया आहार।
हो गई यों क्रांति जग में दीन महिलोद्धार॥

एक दिन गंगा नदी के, रेत पर से वीर ।
एक तरु के पास पहुंचे, ध्यान धरने धीर ॥
खिंच गए सिकता धरणि पर, आप युग पग-चिह्न ॥
ज्योतिषी निकला जहाँ से, देखता ये चिह्न ॥

नाम था पुष्पक कि जिसका, रेख पग को देख ।
सोचता यह चक्रवर्ती, भूप जैसी रेख ॥
और फिर पुस्तक निकाली, जो बगल में साथ ।
देखता उससे मिलाकर, पुस्तिका निज हाथ ॥

चक्रवर्ती के चरण ये, थे जंचे सब भाँति ।
सोचता भूला स्व-पथ है, वह मिले किस भाँति ॥
प्राप्त यदि मैं उसे कर लूं, लाभ लूं मैं साध ।
यदि हुआ चक्रीश नृप वह, मिले द्रव्य अगाध ॥

यदि न वह चक्रीश अब तक, तो करूं कुछ यत्न ।
और उसको मैं बनाऊं—विश्व अधिपति-रत्न ॥
इस तरह कुछ हाथ आए, ज्योतिषी यों सोच ।
चल दिया वह खोजता पग-चिह्न ले बिन शोच ॥

देखता पग-चिन्ह जिसके, ध्यान में वह लीन ।
बाजुओं पर चक्र चिन्हित, वस्त्र से पर हीन ॥
और माथे पर बना भी है मुकुट का रूप ।
'भिक्षु यह' कहता हृदय में, 'हो न सकता भूप ॥'

और वह निज पुस्तिका को, ध्वंश करने अर्थ ।
है समुद्यत, एक दर्शक देख बोला—'व्यर्थ ॥

फाडते क्यों बन्धु ! पुस्तक-क्या हुई है बात ?'
'क्या बताऊँ मित्र !' बोला, ज्योतिषी निष्णात ।।

'ग्रन्थ है यह भ्रांत यों मैं कर रहा हूं भग्न ।
ग्रन्थ के अनुसार तो यह व्यक्ति जो हैं नग्न ।।

चाहिए चक्रीश होना, पर नहीं यह बात ।
सत्य हो सकती कभी भी, यह यहाँ पर ज्ञात ।।'

किंतु दर्शक ने कहा—'ठहरो तनिक मम मित्र ।
व्यर्थ ही मत नष्ट कर दो, ग्रन्थ के सब पत्र ।।

नग्न भिक्षुक ये सुनो हैं, कुण्डपुर-युवराज ।
तुच्छ इनके सामने हैं, सब जगत का राज ।।

धर्मचक्री ये बनेंगे—तीर्थ के कर्तार ।
ये विचक्षण व्यक्ति जग में, शांति के आगार ।।'

वृत्त सुन उसको अचंभा-सा हुआ बिन माप ।
लौट निज पथ पर गया तब ज्योतिषी चुपचाप ।।

वीर पहुंचे एक दिन थे, घूमते उज्जैन ।
साधना में लीन, कहते हैं न कुछ भी बैन ।।

नाम अतिमुक्तक कि जिसका, शव-दहन संस्थान ।
योग प्रतिमा में वहाँ पर, थिर हुए धर ध्यान ।।

स्वर्ग में इस ही समय पर थी चली यह बात ।
वीर-सा कोई न जग में, ध्यान में निष्णात ।।

सुन न पर भव रुद्र इस पर, कर सका विश्वास ।
वह परीक्षा हेतु आया, कर उठा बहु त्रास ।।

हाँ प्रथम उसने बहुत ही, दैत्यगण विकराल ।
थे रचे निज शक्ति माया, से कुडौल विशाल ॥
कष्ट जिनसे दे अमित ही, हो न पाया तुष्ट ।
चिंघता हाथी दिखाया मारने को दुष्ट ॥

पर न इससे वीर अस्थिर, शान्त दृढ़ गम्भीर ।
आत्म-दृढ़ता में जड़े-से, व्यर्थ दुःख समीर ।
किंतु इससे देख वह, भव रुद्र ही अति ही उग्र ।
कर उठा उत्पात दुस्तर वीर वर के अग्र ॥

शीत की ऋतु और उसने, अति किया हिम पात ।
पर रहा निष्कम्प ऋषिवर का प्रबलतम गात ॥
और तब उसने बहाया, तेज झंझाबात ।
मेघ गरजन, विद्यु तड़पन और वर्षा-घात ॥

सर्प विच्छू कनखजूरे, जन्तुओं के बार ।
क्रूर मायावी उपस्थित, ध्यान करने क्षार ॥
किन्तु इससे योगि सन्मति, हैं न अस्थिर चित्त ।
सह रहे उपसर्ग निश्चल शान्ति समता वृत्ति ॥

रुद्र वे सब कृत्य निष्फल, देख सोची बात ।
चाहिये करना मुझे अब, नीति का आघात ॥
इसलिए ही मात त्रिशला, का रखा निज रूप ।
और आया पास उनके, छलमयी धर रूप ॥

छद्मवेषी दुष्ठ बोला—'आह ! मम प्रिय नन्द ।
ढूँढती तुझको फिरी मैं, गिरि गुहा सुखकन्द ॥

तव पिता जी आज अन्तिम, भर रहे हैं श्वास।
देखने को मुख तुम्हारा, जग रही है आश॥
तुम चलो झट पास कर दो, तुष्ट दर्शन-प्यास।'
वीर का तन भी हिलाते, यों कहा भर श्वास॥

आत्म-रत पर वीर ने कब, ये सुने छल-छंद।
वे न मोही कब जगत के, ध्यानरत निर्द्वन्द॥
मोह-कारक कर्म-दुस्तर, कर रहे यों ध्वस्त।
पा रहे अब तो अहर्निश, शुक्ल ध्यान प्रशस्त॥

हार कर वह देव करने, अब लगा परिताप।
व्यर्थ इनको हीं सताया, साधु यह निष्पाप॥
इन्द्र कहते ठीक थे, ये तो न शङ्का योग्य।
उच्च साधक, हाय मैं तो, देव अधम अयोग्य॥

विश्व विजयी शक्ति मेरी, ऋद्धियाँ उत्कृष्ट।
आज इनके आत्म-बल के, सामने निःकृष्ट॥
ओह! ऐसे साधु जन को, व्यर्थ देकर क्लेश।
दृढ़ किया अघ-कर्म-बन्धन, अब न यह निःशेष॥

है शरण अब कौन जग में, पाप-हर अब कौन?
मैं चलूं इनकी शरण ही, ये महात्मा मौन॥
और उसने वीर के पद में नवाया माथ।
फिर क्षमा वह माँगता है, अति विनय के साथ॥

किन्तु सन्मति साम्य अन्तस, रागद्वेष अशेष।
दूर उर की ग्रन्थियों से, दूर वे विद्वेष॥

देवता भव रुद्र ने अति दैत्यगण विकराल ।
थे रचे निज शक्ति माया से कुडौल विशाल ॥
कष्ट जिनसे दे ग्रमित ही हो न पाया तुष्ट ।
चिंघाड़ता हाथी दिखाया मारने को दुष्ट ॥
पर न इससे वीर ग्रस्थिर ध्यान दृढ़ गम्भीर ।
ग्रात्म-दृढ़ता में जड़े थे व्यर्थ दुःख समीर ॥

ला न पाईं देवियां प्रभु ध्यान पर विश्वास।
वे गईं लेने परीक्षा, अन्त में सोल्लास॥

नव किए श्रृंगार पहुँचीं थे जहां पर वीर।
छोड़ने अब तो लगीं वे काम के दृग तीर॥

× × ×　　　× × ×　　　× × ×

पास चारों ओर उनके कर रहीं वे नृत्य।
[illegible], साथ मधुमय वासना के कृत्य॥

यह मदिर मधुमय रसीला स्वर्ग का संगीत।
पर न पाया वीर को यह साधना को जीत॥

जब गया भव रुद्र सुरपुर, तो कहाँ यह बात ।
वीरवर सम तप न जग में, है किसी का ज्ञात ॥

वे मरण से भी न हो सकते कभी भयवान ।
हैं डिगा सकते न उनको, देव या इन्सान ॥

देवियाँ बोलीं तमककर, बस करो भव रुद्र ।
हो चुकी अतिशय प्रशंसा, अब न धैर्य-समुद्र ॥

देव नर ही कर न पाए, भ्रष्ट उनका ध्यान ।
क्या इसी से तुम समझते, श्रेष्ट साधु महान ॥

अप्सराओं के सजीले, रूप यौवन गात ।
क्या न उनपर मुग्ध जो है, नृत्य में निष्णात ॥

स्वर मधुरतम और मधुमय, भावना संगीत ।
क्या न उनको कर सकेगा, तप डिगा मन-मीत ॥

तव नयन-शर रूप यौवन, योग सम्मुख छुद्र ।
कर न पाएंगे उन्हें चल,' देव बोला रुद्र ॥

ला न पाईं देवियाँ इस बात पर विश्वास ।
वे गईं लेने परीक्षा, अन्त में सोल्लास ॥

नव किए शृङ्गार पहुंचीं, थे जहाँ पर वीर ।
छोड़ने अब तो लगीं वे, काम के दृग तीर ॥

पर न इससे विद्ध सन्मति, तप निरत निष्काम ।
वे पुनः करने लगीं तब, नृत्य मृदु अभिराम ॥

पास चारों ओर उनके, कर रहीं वे नृत्य ।
गानगातीं साथ मधुमय वासना के कृत्य ॥

यह मदिर मधुरिम रसीला, स्वर्ग का संगीत।
पर न पाया वीर की यह साधना को जीत ॥

किन्तु इससे अप्सराएँ, हो न पाई तुष्ट ।
वासना की चेष्टाएँ, कर उठीं अति पुष्ट ॥

सन्निकट जा वीर के वे कर रहीं मृदु स्पर्श ।
कर रही अभिसार-चेष्टा, काम वृत्ति सहर्ष ॥

पर विरागी वीर वर हैं, मग्न रति-हत ध्यान।
मूर्तिवत् ही देख निश्चल, देवियां हैरान ॥

वे ठगीं सीं देखतीं अब, है चकित-से भाव ।
शर्म-सी उनमें-समाई, गत हुए दुर्भाव ॥

फिर गईं निज मुँह लिए-सी, देवियाँ ये स्वर्ग ।
किन्तु तप में लीन सन्मति, प्राप्त हो अपवर्ग ॥

स्वर्ग चाहिए नहीं वीर को,
विपदामय संसार ।
उपसर्गों को झेल कर रहे,
कर्मों का संहार ॥

एकादश सर्ग

केवलज्ञान एवं धर्मोपदेश

द्वादश वर्षों तक अति घोर, तपस्या तपकर ।
उपसर्गों को झेल, ठेल बाधाएं दुस्तर ॥

पहुंचे जम्बूक ग्राम वीर, ऋजुकूला के तट ।
करते नष्ट कर्म करा हैं, वे तप में डट ॥

है वसन्त अपने यौवन की, श्री-सुषमा में ।
चारों ओर वीर के विकसित, छवि आभा में ॥

उत्सव होने वाला क्या, दिखता है कोई ।
आज शुष्कता मुदित प्रकृति ने मुख से धोई ॥

वातावरण महकता अपनी, रूप - सुरभि में ।
किन्तु रम रहे सन्मति तन्मय, निज परणति में ॥

बैठे हैं पाषाण शिला पर, शाल वृक्ष-तर ।
वेला माढे ध्यान हो रहा, शुभ्र शुक्लतर ॥

लो वैशाखी शित दशमी भी क्रम से आई ।
घन अज्ञान अमा सन्मति ने, सहज मिटाई ॥

मिटे घातिया कर्म-तमस-अणु जन्म-जन्म के ।
ज्योतिपुञ्ज सन्मति आत्मा में, उदित ज्ञान के ॥

हुए वीर सर्वज्ञ ज्ञान, केवल यों पाया।
काश, इसी से हर्ष चर्तुदिक, आज समाया ।।

पाना केवल ज्ञान सरल क्या, इस जीवन में ?
होते त्रिजग त्रिकाल चराचर ज्ञात कि जिसमें ।।

स्वर्ग लोक में इन्द्रराज ने, अवधि ज्ञान से।
ज्ञात किया समलंकृत सन्मति, पूर्ण ज्ञान से ।।

चला धरणि की ओर लिए निज सारा परिकर।
रोम-रोम से हर्ष विहंसता, सुखकर अवसर ।।

लो, समुदाय मोद का ही, ज्यों सजकर आया ।
विजय, पर्व का जैसे हो, त्यौहार मनाया ।।

विजय,विजय यह सन्मतिकी सच विजय आत्म की
इससे बढ़कर क्या हो सकती, विजय विश्व की ।।

आकर किया अर्चना वन्दन, अमित चाव से।
दिखते पुलकित विनत सभी,अति विनय भावसे ।।

जगोपकार हित रचा इन्द्र ने उपदेशालय।
समवशरण यह,मिली सभी को शरण साम्यमय ।।

समवशरण यह देव कृत्य, अद्भुत पर सुन्दर ।
कमल पुष्प-सा छवियुत,संस्कृत-धर्म-सुरभि-धर ।।

अग्र भूमि का वर्ण मनोहर, नग नीलम-सा ।
कांति निराली बृहत् क्षेत्र का,सच स्वर्गिम-सा ।।

दूर जहाँ से जिन-दर्शन कर, सुर नर नमते।
मानांगणा क्षेत्र अनुपम-सा, उसको कहते ।।

जगोपकार-हित रचा इन्द्र ने उपदेशालय।
समवशरण यह मिलो सभी को शरण साम्यमय॥

× × ×　　　　× × ×　　　　× × ×

जिसके चारों ओर सभा-गृह बारह दिखते।
जिसमें बैठ धर्म-ध्वनि सुन भवि भव-भय हरते॥

चार सभायें साधु आर्यिका पशु मानव की।
शेष कल्प भुव व्यन्तर ज्योतिष देवि-देव की॥

× × ×　　　　× × ×　　　　× × ×

नवम कली सी भली बनी इस गन्धकुटी पर।
अन्तरीक्ष विभु वहां विराजे विभा विभव तर॥

शिर पर शोभित तीन छत्र अद्भुत छवि वाले।
लगते हैं सर्वज्ञ सर्व-दर्शीश निराले॥

चतुर्दिशाओं में कि जहाँ पर, चार वीथियाँ।
जिनमें मानस्थम्भ देख हत मान-ग्रन्थियाँ।।

मानस्थम्भों पर शोभित हैं, जिन प्रतिमाएँ।
मोद-भाव से जिनको करते सुर पूजाएँ।।

होती श्रद्धा घनीभूत है, सत्प्रभाव यह।
आस्थानांगण कहलाता, आस्था-पढ़ाव यह।।

मानस्थम्भों से आगे फिर, चार सरोवर।
जल-पुष्पों से शोभित निर्मल, दिव्य हृदय-हर।।

इससे आगे रजत कोट है, रजत वर्ण का।
जिसके द्वारों पर पहरा है, व्यन्तरगण का।।

द्वारों से भीतर अगणित हो, सजी ध्वजाएँ।
लहर-फहर कर जो सन्मति का विजय जताएँ।।

इससे बढ़कर कोष्ट दूसरा कञ्चन छवि का।
प्रसरित इसके मिस प्रकाश ज्यों पहले रवि का।।

द्वारों पर हैं खड़े भुवनवासी सुर प्रहरी।
फब जाती जिनसे स्वभावतः कान्ति सुनहरी।।

फिर उपवन है जिसमें दिखते, खड़े कल्प-तरु।
बने सभागृह जहाँ विहरते देव साधु-गुरु।।

कोटि तीसरा धवल फटिक-सा, इससे बढ़कर।
जिसके द्वारों पर प्रहरी-से, खड़े कल्प सुर।।

आगे इनके बने लतागृह सुन्दर-सुन्दर।
स्थान-स्थान पर दिखते हैं, स्तूप आदि वर।।

इसके भीतर मध्य भाग में तीन पीठ पर ।
श्री मण्डप है बीच कि जिसके गंध कुटी वर ॥
जिसके चारों ओर सभागृह, बारह दिखते ।
जिनमें बैठ धर्म-ध्वनि सुन भवि भव-भय हरते ॥

चार सभाएँ साधु आर्यिका, पशु मानव की ।
शेष कल्प, भुव, व्यन्तर ज्योतिष देवि-देव की ॥
निज थानों पर जमें जीव भवि, बाट जोहते ।
चातक-से, ध्वनि स्वांत बूँद की ओर देखते ॥

नवल कली सी भली बनी उस गंधकुटी पर ।
अन्तरीक्ष विभु वीर विराजे, विभा-विभव वर ॥
शिर पर शोभित तोन छत्र अद्भुत, छवि वाले ।
लगते हैं सर्वज्ञ सर्वदर्शीश निराले ॥

हैं आहार न नीहारों की कुछ बाधाएँ ।
हैं सशरीरी ईश न जग की कुछ विपदाएँ ॥
नख केशों की बृद्धि हुई इति, जीवन दमका ।
छाया प्रतिछाया न वहाँ पर प्रभु तन चमका ॥

किरणावलियाँ फूट रहीं, जिन-कंचन तन से ।
उदित हुआ ज्यों सूर्य विभामय उदयाचल से ॥
मधु पराग-सी प्रभु शरीर से गंध निकलती ।
वातावरण सभी अनुरंजित सुरभि महकती ॥

दुन्दुभि बाजे झनन-झनन से बजते रहते ।
मंद पवन इठलाता नभ से पुष्प बरसते ॥

कल्पवृक्ष भी पास दार्शनिक-सा संस्थित है।
चंवर ढुर रहे अवसर अतिशत मङ्गलयुत है॥

किन्तु न अब तक हिली तनिक भी गिरा वीरकी।
हुई न वर्षा भव्य-जनों पर वचनामृत की॥

सुबह गया मध्याह्न काल भी बीत गया अब।
तृतीय समय अपराह्न सभा का भी ली नीरव॥

उठा इन्द्र निज हाथ जोड़कर, खड़ा हुआ तब।
फिर स्व-ज्ञान से बतलाया, जिन-मौन-हेतु सब॥

'यद्यपि है बहु अङ्ग ज्ञान के धारी मुनिवर।
किंतु प्राप्त उपयुक्त न अबतक कोई गणधर॥

अतः आप सब रखें धैर्य, कुछ काल शांत हो।
प्राप्त न जब तक विपुल बुद्धि गणधर प्रशांत हो॥'

और गया देवेन्द्र खोजने, जन मेधावी।
हो पाए जो मुख्य मुख्यतम गणधर भावी॥

वह विदेह में गया जहाँ श्रीमन्धर स्वामी।
समवशरण में विद्यमान, अर्हत निष्कामी॥

ज्ञात किया सर्वज्ञ देव से, इन्द्रभूति द्विज।
जो याज्ञिक पर निकट भव्य, दुर्मति देगा तज॥

होगा गणधर प्रमुख वीर के, समवशरण में।
पाएगा सम्यक् दर्शन जो, वीर-चरण में॥

आया गोर्बर ग्राम मगध में, इन्द्र सोचता।
इन्द्रभूति गौतम को पाया, जीव होमता॥

क्रियाकाण्ड में निरत जाति-मदमें विगलित-सा ।
'विद्यामद-से रहा सदा जो संचालित-सा ॥

चकराया वह इन्द्र देख गौतम की गति यह ।
सोच रहा किस भांति करे उसको, वश में वह ॥

निकला जन-समुदाय तभी, विपुलाचल जाता ।
जहाँ वीर का समवशरण आया, जग-त्राता ॥

समझे गौतम यज्ञ-हेतु, नारी-नर आते ।
हुये मुदित पर देखा सब, अन्यस्थल जाते ॥

ज्ञात किया यह वीर दर्श-हित, भीड़ चली है ।
समझा होम-विरुद्ध कहीं यह पाखंडी है ॥

सोचा जन समुदाय यज्ञ से हटता जाता ।
अतः शिष्य समुदाय-बृद्धि की आवश्यकता ॥

इसी समय आगया इन्द्र घर, देख शिष्य का ।
विनय सहित सम्मान किया, उसने गौतम का ॥

फिर बोला'श्रीमान ! सु-गुरु मम,श्लोक बताकर ।
समाधिस्थ हैं हुए, कर रहा याद सँभल कर ॥

किन्तु न इसका अर्थ समझ में मेरे आता ।
मिला न कोई जो इसका मतलब समझाता ॥

आप अधिक विद्वान ज्ञान के ही जलनिधि हैं ।
आप अर्थ बतला सकते, विद्या-वारिधि हैं ॥'

श्री गौतम जी अपने मन ही मन मुस्काए ।
शिष्य वर्ग सम्बर्द्धन के, शुभ चिन्ह दिखाए ॥

चिन्तन क्रम में कुछ प्रसन्नता लक्षण दर्शित।
आत्म-प्रशंसा-मग्न, समुत्सुक, शिष्य-बृद्धि-हित ॥

बोले तब वे 'किन्तु रख रहे, शर्त एक हम।
होना होगा शिष्य तुम्हें तब गुरु को भी मम ॥'

सुनकर गौतम-शब्द, शिष्य अति साम्य-भाव से।
बोला स्वीकृति-वचन सोच कुछ विनय चाव से ॥

'मुझे शर्त स्वीकार अर्थ बतलावें, श्रीमन्।'
पढ़ा एक लघु श्लोक शिष्य ने जिसमें वर्णन ॥

तीन काल षट् द्रव्य तथा केवल, पदार्थ नव।
सात तत्व, पंचास्ति काय—छः लेश्या नीरव ॥

तीन रत्न का सुनकर जिसको, गौतम के मन।
नौ पदार्थ षट् द्रव्य आदि क्या, भारी उलझन ॥

उलझन पर आवरण डालते, बोले गौतम।
'चलो अर्थ तब गुरु समीप ही, कर देंगे हम ॥

कारण तुम अल्पज्ञ न कुछ भी समझ सकोगे।
अर्थ बताने पर अनर्थ ही कर बैठोगे।.'

सोचा मन में अर्थ बता दूंगा विवाद में।
शिष्य बनेगा इसका गुरु भी, निज प्रभाव में ॥

कहा शिष्यने 'उचित यही हो, आप विज्ञ जन !'
कार्य सिद्धि लख शिष्य रूप में इन्द्र मुदित मन ॥

अग्निभूति, श्री वायुभूति, युग बंधु साथ ले।
शिष्य वेषधारी सुरेन्द्र संग, गौतम निकले ॥

पहुंचे वे राजगृह के उस विपुलाचल पर।
जहाँ वीर का समवशरण आया, जग-हित-कर ।।

किन्तु जभी वे पहुंचे, मानस्तम्भ सन्निकट।
ढहा घरौंदा-सा उनका, मद-किला तुङ्ग झट ।।

गर्व खर्व हो रहा अरे यह चमत्कार क्या ?
समता वातावरण दिखाता निज प्रभाव क्या ?

विनय-भाव अब रंग-ढंग में, टपक रहा है।
जाति-मान अब अन्तरङ्ग से, सटक रहा है ।।

बैठे जाकर वे सब जैसे, नर कोठे में।
सुना उन्होंने महावीर को, दिव्य गिरा में ।।

'गौतम शंका साल रही है, तेरे मन को।
मान न पाता तेरा मन, जीवास्तित्व को ।।

छह द्रव्यें क्या नौ पदार्थ क्या, इसको उलझन।
निश्चल किंतु अनादि निधन है, जीव सचेतन ।।

चेतन, पुद्गल धर्म अधर्माकाश, काल छह।
द्रव्यों का ही नृत्य दिख रहा, जगती में यह।

चित जड धर्माधर्म गगन पंचास्तिकाय हैं ।।
काल अरूपी ही यह केवल, नास्तिकाय है ।।

जीवाजीवाश्रव बंध सु-संवर, और निर्जरा।
तथा मोक्ष इन सात तत्व का शासन प्रसरा ।।

सात तत्व में पाप पुण्य यह दोनों मिलकर।
हो जाते हैं नौ पदार्थ, पद अर्थ अर्थंकर ।।'

अवश मनोगत भावों को कर, असमंजस में।
गौतम का मन भर आया, पर श्रद्धारस में।।

भक्ति भाव में छके हुए से, शिष्य बन गए।
साथ बन्धु युग वीर चरण में, आज रम गए।।

चले बनाने शिष्य, शिष्य ही स्वयम बने अब।
दिव्य नियत का खेल कि अभिनव नाटक नीरव।।

प्रश्नोत्तर कर विभु से करली, धर्म परीक्षा।
गौतम ने यों उभय भ्रातृ संग, लीं जिन-दीक्षा।।

हुए ध्यान में लीन और पूर्वाह्न समय में।
ऋषि गौतम ने पाई अपने आत्म-निलय में।।

सप्त लब्धियाँ बुद्धि विक्रिया अक्षय तप रस।
ऊर्ज्ज और औषधि की प्रगटित,ज्ञान प्रशम रस।।

पुरुषोत्तम ऋषि गौतमकी मति अब निर्मल तर।
होती जाती धवल विमल उज्वल, उज्वल तर।।

धीरे-धीरे योग्य हुए वे, गणधर पद के।
और हुए वे पहले गणधर, वीर-संघ के।।

खिरी वीर-ध्वनि श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन।
विपुलाचल पर प्रथम देशना का सम्वर्षण।।

द्वादशाङ्ग एवं उपांगयुत, श्रुत-पद रचना।
की गौतम ने और बहाया, शारद झरना।।

अर्मिसिंचित जो भव्य–क्यारियां, करता बहता।
जिसमें सम्यक् सदाचरण का, पुष्प विहँसता।।

आता जिस पर मोक्ष-सुफल है पक्व समय है में ।
चिर सुख, दर्शन, ज्ञान, वीर्य होता स्वोदय में ।।

दिव्य सु-ध्वनि यह वर्द्धमान की, सर्वगम्य जो ।
पक्षपात दुर्भेदभाव-हृत, समतामय जो ।।

शुभ प्रभात मध्याह्न और अपराह्न समय में ।
होता है वीरोपदेश शुभ समवशरण में ।।

वस्तु स्वभाव धर्म—सद्दर्शन, आत्मोन्नति मग ।
करता आत्म-प्रतीति खोलते, अन्तर के दृग ।।

दर्शाते जग आदि अन्त विन, नव्य न सर्जन ।
नव रचना संज्ञा केवल, स्वरूप परिवर्तन ।।

है प्रति वस्तु अनेक धर्म की, निखिल विश्व में ।
यों न सत्य के दर्शन होते, एक दृष्टि में ।।

मिटते वादविवाद जगत के स्याद्वाद में ।
सप्तभङ्ग नय दर्शाती 'सत्' निर्विवाद में ।।

निश्चयनय सम्यक् विधि चित-जड़ भेद दिखाती ।
है व्यवहार दृष्टि लेकिन पर्याय बताती ।।

मिथ्या दर्शन वश यह प्राणी दुख-संसृति थित ।
सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित-मग,मोक्ष सु-निश्चित ।।

है निसर्गतः आत्म, ज्ञान, सुख, वीर्य, दर्शयुत ।
विकृत अवस्था में जगती में, पर—प्रकर्ष—रत ।।

इच्छा के कारण बन्दी यह, कर्म-जेल में ।
निज शाश्वत पद भूल रहा—वसु कर्म मेल में ।।

कर्मों के परमाणु नष्ट हों, निखरे चेतन ।
हो जिनेन्द्र, हो जाए इसका ज्ञानमयी तन ।।

श्री सर्वज्ञ वचन-किरणावलि से है होता ।
ध्वस्त तिमिर अज्ञान हृदय, मिथ्या-निशि खोता ।।

ज्ञानालोक सहज छा जाता, अन्तस्तल में ।
छिपते पाप-उलूक अनृत-चमगादर पल में ।।

चोर कषाय न कियत चुरा पाते, आत्मिक निधि ।
सजग चेतना के प्रहरी रहते हैं सब विधि ।।

आत्मा-चकवे का सारा है शोक, विनशता ।
कारण वह निज परिणति चकवी को पा लेता ।।

मानस-मानसरोवर शीतल धवल सरसता ।
जहाँ विवेक-सुहंस सु-गुण-मुक्ता-दल चुँगता ।।

शुद्ध भाव का सरसिज सुन्दर सहज विहँसता ।
प्रशम मन्द मकरन्द मधुप-सा, उड़ता फिरता ।।

जग के कटु भ्रमजालों से अति ऊपर उठकर ।
चलता साधु-काफिला चिर उन्नति के पथ पर ।।

वीतराग अरिहन्त वीर का, वृष-विहार वर ।
स्वतः उधर होता रहते, भवि जीव जहाँ पर ।।

जिधर विहार हेतु चलते, सर्वज्ञ जिनेश्वर ।
उधर भूलते वैर विरोधी, पशु, खग, सुर नर ।।

बिन ऋतु होते वृक्ष मंजरित, कुसुमित फलयुत ।
मानों सजकर प्रकृति सँजोती सन्मति-स्वागत ।।

दल-बादल-सी भीड़ उमड़ती, दर्शन के हित ।
पाती है सब समवशरण में शरण भेद-हत ॥

देव नृपति या अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति न केवल ।
पाते आश्रय वीर–चरण में प्राणी निर्बल ॥

महावीर के सभा–सदन में, पशु–से प्राणी ।
हैं हकदार श्रवण करने को सम जिन वाणी ॥

महावीर उपदेश सर्वहित, जीव दयामय ।
प्राण–अपहरण किसी भाँति भी नहीं धर्ममय ॥

जियो और जीने दो जग में सबको निर्भय ।
परम अहिंसा धर्म प्रकट करते ममतालय ॥

संकल्पी उद्यम-आरम्भी और विरोधी ।
हिंसा कार्यों का त्यागी ऋषि साधु अक्रोधी ॥

पर श्रावक-गण भी संकल्पी हिंसा–त्यागी ।
पूर्ण अहिंसक बनने को रहते अनुरागी ॥

दिखते हैं संघर्ष कलह-विद्वेष जगत के ।
एक परिग्रह के कारण मानव-समाज के ॥

हैं उपभोग्य पदार्थ विश्व के, सारे सीमित ।
उपभोक्ताओं की इच्छाएँ, किन्तु अपरमित ॥

बिना किए परिमाण परिग्रह का कैसे जन ।
बन सकता है निखिल विश्व में साम्य संतुलन ॥

साम्यवाद भी दर्शाते, सन्मति स्वामी हैं ।
समवशरण में साम्य मूर्ति, समता-गामी हैं ॥

कहते दान करो कि सफल हो सम्पति सारी।
आवश्यकता पूर्ति दूसरे की हो भारी॥

अभय, शास्त्र, आहार और भेषज सुदान दो।
समझो धन्य दान अवसर बो सुकृत बीज दो॥

है पाथेय यही भाई! परलोक गमन में।
अतः दान करते न कभी भी हिचको मन में॥

त्याग तपस्या में जीवन का सार सन्निहित।
मानव जीवन सफल इसी में, आत्मा का हित॥

बतलाते—भ्रम मिटा विश्व को करो निशंकित।
सबसे पालो प्रेम कामना-रहित निकांछित॥

घृणा त्यागकर निर्विचिकित्सा रखो सौम्य तर।
लोक-मूढता मेट करो अनमूढ़, दृष्टि वर॥

पर दोषों को ढाँक स्व-गुण का उपगूहन हो।
श्रद्धा-विचलित मनुजों का संस्थितीकरण हो॥

महत जनों में भक्ति अमित, वात्सल्य भाव हो।
करो धर्म की चिर प्रभावना, धर्म—चाव हो॥

है जग पीड़ित जन्म—जरा—मरणों के दुख से।
आत्म मुक्ति से छुट सकता, रौरव पीड़न से॥

धर्म क्षमा मार्दव आर्जव सत शुचि संयम तप।
त्यागाकिञ्चन ब्रह्मचर्य मग, जग जाता ढप॥

शाश्वत सुख प्राप्तोपदेश, होता सन्मति का।
मार्ग सहज ही मिल जाता है, पंचम गति का॥

साढ़े उन्तिस वर्ष विचर प्रभु वीर मेघ-से ।
बरसाते वृष-सुधा रहे, निर्लिप्त वृत्ति से ।।

आर्य खण्ड के मगध विदेह, ग्राम वाणिज में ।
अङ्ग देश पोलाश तथा कौशल, कलिंग में ।।

वत्सदेश, हेमाङ्ग क्षेत्र, अस्मक प्रदेश में ।
मालव, सिन्धु, सुवीर क्षेत्र, पंचाल देश में ।।

सौर और गांधार तथा उस थल, दशार्ण में ।
दूर यवन-श्रुति क्वाथ तोय सुरभीर तार्ण में ।।

कार्ण आदि देशों में भी, सर्वज्ञ वीर का ।
हुआ धर्म संचरण, हरण भव-भ्रमण-पीर का ।।

हुआ विशद् विस्तार, चतुर्विधि वीर संघ का ।
मुनि आर्यिका, श्राविका-श्रावक-ग्यारह गण का ।

सर्व प्रमुख गणधर गौतम जी, इन्द्रभूति थे ।
अग्निभूति थे द्वितीय, तीसरे वायुभूति थे ।।

और शेष शुचिदत्त, अचल, माण्डव्य, अकम्पन ।
मौर्य पुत्र, मेदार्य, सु-धर्म प्रभास साधु-गण ।।

सब मिल कर चौदह हजार जन, वीर संघ में ।
निशि दिन रहते रंगे हुए से, धर्म रंग में ।।

कुछ यूनानी फणिक वणिक, भी हुए सुदीक्षित ।
वीर संघ में बने शिष्य, फारस कुमार वत ।।

जहाँ जहाँ भी गया वीर का, समवशरण शुभ ।
वहाँ सुलभ हो गया, धर्म सम्वर्षण दुर्लभ ।।

श्रेणिक-से सम्राट प्रतिष्ठित, श्रेष्ठि भक्त-गण।
वीर-चरण में करते थे सब सफल स्व-जीवन ॥

वीर-भ्रमण से हुई क्रान्ति छूटा, उत्पीड़न ।
जीव-यजन मिट गया, हुआ पूरा परिवर्तन ॥

सर्व ख्यात गौतम याज्ञिक-से यज्ञ-विरत जब।
स्वतः अहिंसा परम धर्म में, हुए निरत सब ॥

अभय हुए पशु, नर, भग्नाश आश से पूरित ।
मिटी-अकाल मृत्यु जैसे, अब जीवन जीवित ॥

निस्पन्दित से हृदय हुए उनमें नव धड़कन ।
मिटी मलिनतम कुण्ठा मुखसे गत दुख-सिहरन ॥

जीवन का अह्लाद झलकता जन-आनन पर ।
ऋजु धार्मिक सद्वृत्ति समायी, भीतर बाहर ॥

सन्मति ज्ञान-प्रकाश कर रहा ज्योतिर्मय जग ।
भूले भटके सहज आ रहे सज्जीवन मग ॥

वीर चरण है अभय शरण दुखिया निबलों को ।
होते सब निर्द्वन्द्व, सुदृढ़ सम्बल अबलों को ॥

वीर-कृपा से कुटिल क्रूरता मिट पाई है ।
कटु अकाल की संघटना भी घट पाई है ॥

सूखे मौसम में जैसे शीतल जल बरसा ।
विगत विकलता झुलसन में नव जीवन सरसा ॥

मुरझाया विश्वोद्यान अब, हुआ हरा-सा ।
मानवता का घाव हुआ अब भरा-भरा-सा ॥

वीर-शासन ने जगत को,
गति नवल दी।
विश्व के इतिहास की,
झांकी बदल दी॥

अष्टम सर्ग

निर्वाण एवं वन्दना

लोकोद्धार विहार वीर कर,
निष्कांक्षित पहुंचे पावा पर।
धर्म-धाम-सा जो संस्थित है,
प्राची में भारत-वसुधा पर ॥

प्रकृति-गोद में श्री समृद्धि-सा,
विहँस रहा इसका कण-कण है।
और वीर वर शुभागमन से,
अभय हुआ सारा प्रांगण है ॥

सुन शुभ वीरागमन मुदित मन,
व्यक्ति छन्द स्वागत हित गाते।
सँग पावा नृप हस्तिपाल भी,
दर्शन पूजन कर सुख पाते ॥

अन्तिम जिन उपदेश आज सुन,
सबने अपना भाग्य सराहा।
ले सद्व्रत श्री वीर चरण में,
भव्यों ने आत्मिक हित चाहा ॥

बार बार शत-शत बन्दन कर,
लौटे सब अपने अपने थल ।
नैसर्गिक शुभ छटा विहँसती,
वातावरण भासता निश्छल ।।

वहाँ हृदयहारी तडाग ने,
द्विगणित किया सुशोभा अञ्चल ।
शोभित नील अरुण सित शतदल—
हरित पातयुत जलकण चञ्चल ।।

निकट रम्य सर के शुभ उपवन,
नाम 'मनोहर' मनहर जिसका ।
अनुपम सुन्दरता हँसती-सी,
अति अभिराम रूप मृदु इसका ।।

हरी हरी हरियाली में हैं,
खिले लाल पीले नीले—से ।
श्वेत कासनी विविध पुष्प भी,
मानों अर्चा हित उद्यत—से ।।

किस महान मानव की पूजा,
मौन सँजोते पुष्प मुदित मन ।
दिखे तभी पाषाण शिला पर,
समाधिस्थ समरस सु—साधु जन ।।

यह सन्मति आसीन अकेले,
उपवन के एकान्त स्थान में ।

केवलज्ञानी जग विज्ञानी,
निरत आत्म के शुक्ल ध्यान में ।।

सन्मति-जीवन के बीते हैं ।
पूर्ण इकहत्तार साल प्रगति में ।
वर्ष बहत्तारवां अब चलता,
आत्मा की अपनी परिणति में ।।

विघट चुका है समवशरण अब,
केवल आत्मिक चिन्तन नीरव ।
नहीं ध्यान में परिकर वैभव,
नहीं लोक का सुन पड़ता रव ।।

शान्तिमयी जीवन का अञ्चल,
नहीं अतृप्ति बनाती चंचल ।
आत्मिक निधि आवरण-हीन सी,
होती जाती सहसा पल-पल ।।

जीवन की संध्या प्रशान्ति में,
सनी हुई-सी चली आ रही ।
यह अपूर्व समता-सी विलसित,
पग-पग बढ़ती बढ़ी जा रही ।।

सन्ध्या का दूसरा चरण है,
चिर विश्राम रात्रि का आना ।
पर सन्मति का ध्यान शुभ्रतर,
शेष कर्म-मल उन्हें खपाना ।।

कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी-निशि,
बीत रही है ढल-ढल अविरत ।
चिर अघातिया कर्म तिमिर भी,
घात कर रहे शुद्ध ध्यान-रत ॥

शुभ विहान वेला भी क्रम-क्रम,
मन्थर गति से चली आ रही ।
और साधना सन्मति विभु की,
लक्ष्य दिशा को बढ़ी जा रही ॥

शेष कर्म तारागण देखो,
कुछ कुछ विघटित हुए जा रहे ।
चरम लक्ष्य शिवपद अरुणोदय,
चिह्न सहज ही चले आ रहे ॥

महावीर आत्मा ने तोड़ा,
वह शेष कर्म बन्धन पिंजड़ा ।
उन्मुक्त विहग-सा उड़ा-उड़ा,
आलोकमयी चित् ज्ञान जड़ा ॥

कर गया सहज ही ऊर्ध्व गमन,
सत शुद्ध बुद्ध निर्मल चेतन ।
तन-गृह से अब शिव सौख्य-सदन,
पहुंचा लहराया जय-केतन ॥

'जय जय जय बोली सुर नर ने,
निर्वाण-धाम-गामी की जय ।

झूमते भक्ति में बोल रहे—
श्री महावीर स्वामी की जय॥

जय जय जिनवर, जय जय जिनेन्द्र,
जय जय जगत्राता जगन्नाथ।
जय परमात्मा पावन प्रकाम,
जय उच्चारित उत्साह साथ॥

प्रतिध्वनित हुआ भू-नभ मण्डल,
'जय जय' ध्वनि की लहरें चञ्चल।
पर सन्मति विभु ने सच पाया,
चिर सौख्य स्थान अक्षय अविचल।

देवों ने रत्न विकीर्ण किए,
झिलमिल झिलमिल जगमग-जगमग।
आलोकमयी अब भूमि—गगन,
उपदेश वीर का ज्योतिर्मग॥

यह मङ्गलमय मङ्गल का दिन,
हो गया माङ्गलिक पर्व पूत।
सन्मति-सन्देश लिए बहता,
उन्मुक्त समीरण शान्ति—दूत।

प्राची में छाई अरुणाई,
क्या आत्म-ज्योति का ही दर्शन ?
क्या सूरज के मिस मुक्त वीर,
के ज्ञान-पुञ्ज-रवि का उदयन ?

यह ज्ञानोदय का नवल प्रात,
अज्ञान-अमा-तम सहज घात।
सत् स्वर्णिमांशु का मृदु प्रसरण,
वह चला ज्योति का नव प्रपात ॥

छाया प्रकाश अवनी तल पर,
नूतन आभा-सी छिटक गई।
खग-रव में कौन प्रभाती स्वर?
श्रुत-मधुर सुरीली तान नई ॥

संयोग अनोखा एक और,
इस महावीर निर्वाण-दिवस।
श्री गौतम केवल-लक्ष्मी-युत,
घातिया कर्म-गढ़ गया विनस ॥

भगवान वीर की संस्मृति के,
ताजी प्रकाश में भक्त-हृदय।
श्रद्धा से भर-भर आते हैं,
कर रहे अर्चना सब सविनय ॥

स्वाभाविक ही कवि कण्ठों से,
निस्सृत जिनवर प्रति भक्ति छंद।
पावन स्वर-लहरी-सरिता में,
सब मग्न नहाते भविक-वृन्द ॥

गायक मढ़ अपने गीत रहे,
प्रभु वीर-वन्दना में ललाम।

गाते जिनको पञ्चम स्वर में,
कुछ जन पढ़ते जिन सहस्रनाम ।।

झन-झन ढ़प झाँझ मृदंग आदि,
वादित्र बज रहे सरगम मय ।
जिनके स्वर साथ साथ होते,
श्रद्धा गायन मधुरिमलय मय ।।

यह भक्ति भाव आवेग देव !
तव सुगुण कथन का कहाँ अन्त ।
चाहे तन रोम-रोम बोले,
बन लक्ष वाणियाँ, गुण अनन्त ।।

पर श्रद्धा में अभिभूत हुए,
अपनी सीमित वाणी में ही ।
गा तव यश करते तोष अमित,
है भक्त जनों को बहुत यही ।।

तव संस्तुति है पीयूष कि जो
देता शाश्वत अमरत्व सदन ।
सम्यक्त्व सहज दृढ़ हो जाता,
होती कुमृत्यु की भीति शमन ।।

कर पान भक्ति की अञ्जुलि से—
वचनामृत, भक्त सबल बनता ।
भगवान स्वयं भी बनने को,
सन्मति-पग-चिह्नों पर चलता ।।

है भक्ति आपकी किंकर को,
सच आप तुल्य ही कर लेती।
यह अक्षय समता का प्रयोग,
भौतिकता क्या समता देती ?

कोई भौतिक अभिलाष नहीं,
केवल निःश्रेयश का साधन।
सन्मति - अनुगामी चाहेगा,
कब तुच्छ–तुच्छतम जग-जीवन ॥

स्वातंत्र्य चिरन्तन सन्मतिवत्,
चाहिए पूर्णपद आत्मा का।
जिससे जग-पीड़ित पुरुष स्वयं,
पा ले स्वरूप परमात्मा का ॥

जिसने तव भक्ति–स्वाद पाया,
वह कैसे आत्मिक रस ढोले ?
जिसने क्षीरोदक पान किया,
वह कैसे खारी जल पीले ?

हे देव ! न जग में दिखता है
निस्पृही आप–सा उपकारी।
तव जीवन का प्रत्येक चरण,
उन्नति-सोपान बना भारी ॥

है कौन मोक्ष का मग, जिनेन्द्र !
अतिरिक्त आपके दर्शाता ?

जैसी कि आपकी विमल छाँह,
अन्यत्र कहाँ यह जग पाता ?

संस्मरण मात्र से होता है,
गुरु पाप-ताप का वेग शान्त।
जैसे फुहार से मिट जाती,
अति ग्रीष्म-तपन की जलन क्लान्त॥

अति रोग शोक जल अग्नि प्रलय,
भीषण रण विपति बार बर्बर।
तब भक्ति समक्ष न रुक पाते,
ज्यों भगता तम पा ज्योति जगर॥

इस भाँति वीर का विशद् विरुद,
करते अनुभव कहते प्रशस्त।
संस्तवन भजन या कीर्ति-कथन,
जय–माल–गान में लोग व्यस्त॥

प्रभु वीर चिन्तवन-चर्चा में,
भवि जीव समय यों बिता रहे।
सन्मति निर्वाण-प्रसंग आज,
निर्वाण पर्व हैं मना रहे॥

निर्वाण-न कोई गम का क्रम,
शाश्वत सुख का शाश्वत उद्गम।
समरसता का अक्षय विहान,
चिर दर्श, ज्ञान, बल, सुख-संगम॥

इस भौतिक जग में भी रहता,
शव रूप न जो दुख उद्दीपक ।
पुद्गल अणु स्वयं विखर जाते ।
रहते जो आत्मा के बाधक ॥

इसलिए प्रशम मुद मृदुल लहर,
सब ओर थिरकती–सी रहती ।
आत्मिक उन्नति की वेला में,
आह्लाद पूर्ण संस्थिति रहती ॥

आनन्दमयी अभिनय होते,
जिनमें शाश्वत–आनन्द झलक ।
झीनी सुखमयी झलक पड़ती,
लखते जिसको दर्शक अपलक ॥

सन्मति पग-चिह्नों के अनुचर,
सब रंक-राव, उन्नत-अवनत ।
अन्तर कालुष्य मिटाने को,
हृद–दीप जलाने को उद्यत ॥

लो, शनैः शनैः दिन बीत गया,
अलसाई सन्ध्या मुस्काई ।
निर्वाण-ज्योति की आभा में,
आलोक सु-चीर पहन आई ॥

सब नगर-डगर-घर दीप जले,
प्रारम्भ हो गई दीपावलि ।

जग जगर-मगर हर तिमिर-प्रहर,
नर्तित प्रकाश की किरणावलि ।।

तिल-तिल चल-चल अपने में जल,
यह जना रही आत्मिक प्रकाश ।
निज आत्म-ज्योति से ध्वस्त करो,
अज्ञान तमस का जटिल पाश ।।

आत्मिक विकास की शिखा सजग,
सन्मति-प्रकाश है दिखा रही ।
निज-पर-कल्याण हेतु जीवन,
उत्सर्ग सबक है सिखा रही ।।

आलोकमयी जीवन का क्रम,
तम भी होता जाता स्वर्णिम ।
सद्गुण प्रतीक—सा यह अनुपम,
स्वर्गिक वैभव भी इससे कम ।।

यह त्याग-ज्योति का प्रख्यापक,
विभु वर्द्धमान की कीर्ति-किरण ।
ज्योतिर्मय अन्तर-बाह्य सभी,
रे धन्य ! वीर शिव-रमा-वरण ।।

प्रभु धन्य धन्य सन्मति स्वामी,
जिनवर जिनेन्द्र विभु निष्कामी ।
शाश्वत सु-शान्ति निधि अभिरामी,
शिवपद-दर्शक शिवपथगामी ।।

जीवन में अर्हत महावीर,
फिर जीवनान्त पर सिद्ध सफल ।
मानवता की मृदु मूर्ति सुभग,
दलितों दीनों के प्राण विकल ॥

पीड़ित की आहों के धीरज,
शोषित के सब शोषण शोषक ।
आश्रय हीनों के दृढ़ आश्रय,
पापी - उद्धारक - पथ - पोषक ॥

अवलम्ब चाहकों के सम्बल,
मानव - मानवता - उन्नायक ।
पशुता के बर्बर बार क्षार,
सज्जीवन के प्रभु परिचायक ॥

मानवोत्कर्ष के चिर प्रकर्ष,
शुचितम सात्विक जीवनादर्श ।
आह्लादपूर्णतम मूर्त हर्ष,
निस्सीम क्षीण विश्वापकर्ष ॥

युग युग में सम्यक् मग दृष्टा,
सम्यक् दर्शन के दृष्य चित्र ।
सम्यक श्रद्धा के मूर्त पात्र,
सद्ज्ञान-दान-दाता सुमित्र ॥

सुख-शान्ति-उदधि के लहर-लास,
अति पतितों के श्वासोच्छ्वास ।

शुचि सत्य अहिंसा के विकास,
सत् ज्ञान-द्वीप के चिर प्रकाश ॥

विश्वोद्धार-सरसिज-सु-हास ,
निस्पृहता, समरसता सु-वास ।
प्रभु लोक-रंजना से उदास,
चिर सुख-दर्शन-बल-ज्ञान-वास ॥

हिंसा रजनी को शरच्चन्द्र,
अत्याचारों के प्रतिद्वन्दी ।
सद्दया—तीर्थ के तीर्थङ्कर,
शुभ सत्य शांति के अभिनन्दी ॥

प्रभु ! पर पीड़ा-हेमन्त हन्त,
जग-हित हरियाली के बसन्त ।
कटु क्लेश-कलह के पूर्ण अन्त,
शुभ मोक्ष लक्ष्मी के सु-कंत ॥

भव-सिन्धु तरण को वारियान,
विभु ! सत्यं शिवं सुन्दरं मय ।
रे, जगजननी के सफल पूत,
हे वीतराग ! हो गए अभय ॥

सब कालों में आदर्श अमल,
चिर उन्नति के अति उच्च भाल ।
गत आगत और अनागत में,
सुखप्रद प्रशान्ति के अमर लाल ॥

सद्धर्म सु-स्वर सु-मधुर सरगम,
वाणी कल्याणी तव प्रकाम ।
हे सहस नाम धारी ललाम,
तुम निरुपमान उपमान-नाम ॥

कवि की वाणी के अलङ्कार,
कवि के कवित्व के काव्य सुघर ।
कवि के गानों के चिर गाने,
फिर भी कवि प्रज्ञा के बाहर ॥

फिर कैसे गरिमा-गायन हो,
कैसे असीम ! अभ्यर्थन हो ।
कैसे अभिनन्दन पद-वन्दन,
कैसे श्रद्धांजलि अर्पण हो ॥

निस्सीम देव ! सीमित वाणी,
यश-गान न कुछ भी बन पाता ।
श्रद्धालु विनत अन्तस लेकिन,
जय बोल झुका शिर सुख पाता ॥

जय जय जय जयवन्त सदा त्रिशला-नन्दन ।
जय जय जय जय जगवंद्यनीय शत् शत् वंदन ॥